''अरे, बात क्या है–'' मैंने कहना चाहा और एकदम मुझे याद आ गया– आज 12 दिसंबर थी, हमारी शादी की सालगिरह। दूसरी–दूसरी बातों में इतनी खो गई थी कि इसकी याद ही न आई थी।

मेरा चेहरा देखते ही वह मेरे गले में झूल गई–''पकड़ी गई न! आप लोगों ने सोचा होगा, चुप्पी लगा जाएँगे तो सस्ते में छूट जाएँगे। ऐसा नहीं होगा। पापाजी, तीन–चार कड़कते नोट तैयार रखिए। हम लोगों की नीयत आज अच्छी नहीं है।''

''तुम्हें कैसे पता चला बेटे! हमें तो याद ही नहीं रहा था।'' इन्होंने गद्गद होते हुए पूछा।

''लंच के समय ध्रुव की डायरी उलट–पलट रही थी। तब नज़र पड़ी। उसकी तो ऐसी ख़बर ली है मैंने। इतनी महत्वपूर्ण बात भूल गया।''

''ध्रुव है कहाँ?'' मैंने पूछा।

''शिव को लाने कॉलेज गया है। हमने तड़ी मारी है तो उसे पढ़ने थोड़े ही देंगे। आज तो हंगामा होगा।''

थोड़ी देर में वे दोनों भी आ गए। फिर तीनों ने मिलकर हम दोनों की आरती उतारी, पैर छुए और उपहार भी दिए। मेरे लिए सुन्दर रेशमी साड़ी और पापा के लिए स्वेटर। उसी समय दोनों चीज़ों का उद्घाटन करना पड़ा। कैमरे से घर पर रंगीन तस्वीरें खींची गईं। फिर सब लोग फेमस स्टूडियो गए। वहाँ एक ग्रुप फोटो हुआ। उस फोटो के लिए मीता पारंपरिक बहू की वेशभूषा में सजी थी और मेरे पीछे खूब अच्छे से सिर ढंककर खड़ी थी। शिव बार–बार उसे छेड़ रहा था।

फर्स्ट शो हम लोगों ने 'अंगूर' देखी। फिर ब्ल्यू डायमंड में खाना खाया। क्वालिटी में आइसक्रीम और बनारसी पानवाले के यहाँ का पान खाकर घर लौटे तो रात के ग्यारह बज रहे थे। बेहद थक गई थी मैं, पर यह थकान भी कितनी मीठी थी!

''बाप रे, थक गई मैं तो! इन लोगों ने सचमुच एक हंगामा कर डाला। अब इतनी उछल–कूद के लायक़ थोड़े ही रह गए हैं हम।'' रात मैंने हँसते हुए कहा।

पर देखा, ये चुप हैं और आग्नेय दृष्टि से मुझे घूर रहे हैं।

''क्या हुआ?'' मैंने घबराकर पूछा।

''वह लड़की बेचारी माँ–माँ कहकर मरी जाती है, और तुम?''

''क्यों, मैंने क्या किया है?'' मैंने खीझकर कहा। मन में छाई ख़ुशी भाप बनकर उड़ने लगी थी।

''मुझसे क्या पूछती हो? अपने–आप से पूछो कि तुमने क्या नहीं किया है। वह बेचारी बिना माँ की लड़की।''

''बिना माँ की है तो क्या करूँ।'' मैं एकदम फट पड़ी। शाम ममता का एक सोता फूट पड़ा था, अन्तस् में वह जमने लगा था, ''बिना माँ की है तो मैं क्या करूँ, यह तो बताइए। गोद में लेकर घूमूँ या लोरी गाकर सुनाऊँ?''

उन्होंने जवाब नहीं दिया और करवट बदलकर लेट गए। इतना ग़ुस्सा आया। यह अच्छा तरीक़ा है, जवाब देते न बने तो बात ही ख़त्म कर दो।

''अजीब मुसीबत है,'' मैं बुदबुदाई, ''दिनभर घर में धींगामुश्ती चलती रहती है। छोटे-बड़े का भी लिहाज नहीं रखा जाता। फिर भी मैं कुछ नहीं कहती। चुपचाप देखती रहती हूँ। फिर भी मुझे चैन नहीं है। पराई लड़की पर तो लोगों को इतनी ममता हो जाती है! साल-छः महीने में अपनी जाई घर आती है, उसका तो कभी ऐसा लाड़-दुलार नहीं किया।''

वे एकदम पलटे, ''उसका लाड़-दुलार क्या खाक करूँगा? वह तो तुम्हारे अनुशासन में पली हुई बिटिया है। आज तक कभी खुलकर बात भी की है उसने मुझसे?''

अब चुप रहने की बारी मेरी थी।

जनवरी के प्रथम सप्ताह में ध्रुव को अचानक छः महीने के प्रशिक्षण के लिए जर्मनी जाने का आदेश मिला। घर में एक ख़ुशी की लहर दौड़ गई। कितने सारे लोगों में सिर्फ़ उसी का चयन हुआ था। गर्व से हम लोगों के कलेजे गज-गज भर के हो गए थे।

जोर-शोर से तैयारियाँ शुरू हो गईं और मेरा दिल बैठने लगा। लड़का पहली बार इतनी दूर, परदेश में जा रहा था और फिर नयी-नवेली बहू को पीछे छोड़कर जा रहा था।

''मीतू को भी क्यों नहीं ले जाते? घूम आएगी।'' इन्होंने कहा था।

लेकिन मीता ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। वह बोली, ''बेकार रुपये फेकने से क्या फ़ायदा पापाजी। ध्रुव का खर्च तो कंपनी देगी। मेरा तो हम लोगों को ही उठाना पड़ेगा। कभी अपना भी चान्स आयेगा। है न शिव?''

वह हमेशा की तरह हँसमुख बने रहने का भरसक प्रयास करती, पर कभी-कभी उसका चेहरा बेहद उदास हो आता। स्वाभाविक भी था। पर मुझे चिंता हो चली थी। आखिर मैंने एक दिन ध्रुव से कहा, ''बेटे, तुम्हारे लौट आने तक मीता अपने पापा के यहाँ रहे तो कैसा है?''

''कहीं भी रह लेगी माँ। छः महीने की तो बात है। पलक झपकते बीत जाएँगे। और सब-कुछ ठीक-ठाक रहा तो लौटते समय पंद्रह-बीस दिन के लिए उसे बुला लूँगा। घूम-घाम लेंगे।''

उसने तो बात समाप्त कर दी थी, पर मेरी चिंता वैसी की वैसी बनी हुई थी। बच्चों के पापा का स्वास्थ्य इन दिनों कुछ ठीक नहीं था। वह यहाँ उदास बनी रहेगी तो उसका सम्बन्ध सीधे मुझसे जोड़ देंगे। इसीलिए डर लग रहा था।

शिव और मीता उसे छोड़ने बम्बई तक गए थे। लौटकर मीता अपने पापा के यहाँ चली गई। उसकी भाभी के यहाँ लड़का हुआ था। फिर महीने-भर बाद भाभी अपने पीहर चली गई तो उसने घर की देखभाल के लिए वहाँ रह जाना चाहा तो हमने कोई आपत्ति नहीं की।

घर एकदम सुनसान हो गया था।

बच्चों के पापा ध्रुव से ज़्यादा मीता को याद कर रहे थे। हर चौथे-आठवें दिन समधियाने पहुँच जाते। कभी घसीटकर साथ मुझे भी ले जाते। तब समधीजी चुटकी लेते, ''अपने बच्चों के लिए कैसे दौड़-दौड़कर आ जाते हैं आप। मुझ गरीब की तो कभी सुध भी न ली।''

शिव भी अक्सर देर से घर लौटता। कभी भाभी के साथ खरीददारी करनी होती थी या कभी उन्हें फिल्म दिखानी होती थी।

कभी-कभार वह भी घर पर आ जाती, पर पहले का-सा तूफान बरपा नहीं करती। हँसती-खिलखिलाती, पर उसमें पहले की-सी जीवंतता नहीं थी। जब वह चली जाती तो यह कहते, ''कहा था, साथ चली जाओ। तब नहीं मानी, पैसे का मुँह देखती रही। अब मन-ही-मन घुल रही है।''

मार्च का अंतिम सप्ताह रहा होगा।

एक रात इनके पेट में जोर का दर्द उठा। पता नहीं कितनी देर से तड़प रहे थे। मेरी तो अचानक नींद खुली तो देखा, पेट पकड़े बैठे हैं। चेहरा सफेद पड़ गया है।

''क्या हुआ?'' मैंने घबराकर पूछा, ''क्या पेट दर्द कर रहा है?''

उन्होंने जवाब नहीं दिया। मैं उठी, पानी गरम किया। रुई में हींग की डली लपेटकर उसे जलाया। फिर प्लेट में अजवायन, काला नमक, हींग और गरम पानी लेकर इनके पास आई। वे मना करते रहे, पर जब मैं बार-बार आग्रह करने लगी तो चिढ़कर बोले, ''जरा बात तो समझा करो। वैसा दर्द नहीं है भाई।''

''फिर कैसा है?''

शिव की परीक्षा चल रही थी पढ़कर शायद अभी-अभी सोया था, पर उसे जगाना पड़ा। उतनी रात जाकर वह डॉ. शुक्ला को लिवा लाया।

उन्होंने मुआयना किया और पूछा, ''ये तकलीफ कब से है आपको?''

''जी,15-20 दिन से थोड़ा कष्ट हो रहा था।''

इतना ताव आया मुझे। इतने दिनों तक चुप बने रहने में क्या तुक थी। शिव बोला, ''माँ। यह समय गुस्सा करने का नहीं है। बाद में निपट लेना। पहले उन्हें सँभालो।''

राम-राम करके वह रात बीती। सुबह भर्ती होना ही पड़ा। ऑपरेशन ज़रूरी था। इन्होंने पहले ही अपने आदेश सुना दिए:

''प्राइवेट नर्सिंग होम नहीं जाएँगे।''

''सरकारी अस्पताल में भी प्राइवेट वार्ड नहीं लेंगे। जनरल में रहेंगे। इस ऑपरेशन के बाद नर्सिंग की बहुत ज़रूरत होती है। प्राइवेट वार्ड में कोई झाँकता भी नहीं। दस बार बुलाने जाना पड़ता है।''

उनकी बात न मानने का कोई उपाय नहीं था। खज़ाने की चाबी उन्हीं के पास थी। ध्रुव यहाँ होता तो बात दूसरी थी, पर अब उतनी दूर से उसे बुलाने का कोई मतलब भी न था।

जनरल वार्ड में जो एक रात गुज़ारी है- उफ़। ज़िंदगी-भर याद रहेगी। इनकी वैसी हालत में नींद आने का कोई प्रश्न नहीं था। पर आसपास के वातावरण ने मन को इतना बोझिल कर दिया कि सुबह उठकर लगा, मैं ही बीमार हूँ।

और दुर्गन्ध अब भी याद आती है तो मन पर काँटे-से उग आते हैं। सुबह शिव कहीं से चाय लाया था मेरे लिए, पर घूँट भर भी गले से नहीं उतरी।

दस बजे ऑपरेशन होने को था। नौ बजे ही इन्हें स्ट्रेचर पर डालकर ले गए। मैं और शिव भी पीछे-पीछे चल पड़े। जहाँ तक जाने दिया वहाँ तक गए। फिर मैं वहीं बैठकर इष्टदेव का जाप करने लगी। शिव बेचारा दौड़-धूप में व्यस्त हो गया।

''नमस्ते बहिनजी।''

मैंने चौंककर देखा-मीता के पापा थे।

''आपने तो ख़बर भी नहीं की। इतने बेगाने हो गए हैं हम लोग ...। उनके स्वर में आक्रोश था, शिकायत थी। मैं क्या जवाब देती।

''वो तो मीतू अभी किसी काम से घर गई थी, तब पड़ोसी मेहता साहब ने बताया।''

''सब कुछ इतना अचानक हो गया,'' मैंने अपराधी स्वर में कहा, ''शिव बेचारा एकदम अकेला पड़ गया था। सारी दौड़-भाग उसी के जिम्मे थी।''

''यही तो मैं कह रहा हूँ। उसे अकेले सारी दौड़-भाग करने की क्या ज़रूरत थी। हम लोग किसलिए हैं? कल को ध्रुव सुनेगा तो क्या कहेगा?''

उनसे तो जो भी कहेगा, मुझे तो अपनी चिंता हो गई थी। ध्रुव मुझसे क्या कहेगा? इन पर इतना ताव आ रहा था। दर्द से तड़प रहे थे, पर मजाल है जो बटुए की पकड़ जरा-सी ढीली हो जाए। जनरल वार्ड में रहेंगे। वहाँ नर्सिंग अच्छी होती है-हुँह। अब इतने बड़े आदमी को उस नर्क में ले जाऊँगी तो कैसा लगेगा।

अपनी उस दुश्चिन्ता में यह पूछना भी याद न रहा कि मीता कहाँ है।

साढ़े ग्यारह बजे उन्हें ऑपरेशन थियेटर के पास वाले कमरे में लाकर रखा गया। ऐसे हट्टे-कट्टे, हँसते-बोलते व्यक्ति को इस तरह असहाय अवस्था में देखकर मेरी तो रुलाई फूट पड़ी। मीता के भाई नरेश मुझे सहारा देकर बाहर ले आए और वापस बेंच पर बिठा दिया। असहाय-सी मैं वहाँ बैठी रही।

दो घंटे बाद उन्हें वार्ड में ले जाने की अनुमति मिली। ये दो घंटे मेरे लिए दो युग हो गए थे।

वार्ड में वापसी के समय काफिला जरा बड़ा था। घर-परिवार के लोग थे और स्टाफ़ के भी। ढेर-सी शीशियाँ स्ट्रेचर के साथ चल रही थीं और सब लोग उन्हें उठाए हुए थे।

''माँ, तुम सीढ़ियों से आ जाओ। लिफ़्ट में तुम्हें परेशानी होगी।'' शिव ने कहा तो मैं सीढ़ियों की ओर मुड़ गई।

हाँफती-काँपती ऊपर पहुँची, तब तक स्ट्रेचर शायद वार्ड में पहुँच चुका था, क्योंकि गलियारे में उसका कहीं पता नहीं था। मैं वार्ड तक पहुँची ही थी कि नरेशजी की आवाज़ आई, ''माँजी, इधर आइए।''

उनके पीछे चलती हुई मैं गलियारे के छोर तक पहुँची। सर्व सुविधायुक्त कमरे का दरवाज़ा खुला और खाली

स्ट्रेचर थामे लोग बाहर निकले।

''यह कमरा।'' मैंने अस्फुट स्वर में कहा।

''भाभी ने आरक्षित करवाया है।'' मेरा असमंजस ताड़कर शिव पास आकर फुसफुसाया।

''ये उसके बस की ही बात थी जी,'' उसके पापा गर्व से बता रहे थे, ''अधीक्षक से जाकर भिड़ गई। खड़े-खड़े कमरे का आरक्षण करवा लिया। बहुत लड़ाकू है यह लड़की।''

मैंने मीता की ओर देखा। वह चुपचाप इनके पलंग के पास खड़ी थी।

''घर पर तो तिनका भी नहीं उठाती, नरेश बोले, यहाँ आई है, तब से सफाई में जुटी है। तीन बार तो घर के चक्कर लगा आई है।''

''ये सासजी को खुश करने के उपाय हैं।'' समधीजी ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा।

कमरा सचमुच धुला-पुँछा चमक रहा था। दोनों पलंगों पर घर की साफ चादरें और तकिये रखे हुए थे। मेज पर सफेद मेजपोश था। अलमारी में कागज बिछे हुए थे। उसमें मेरे और इनके कुछ कपड़े तह कर रखे हुए थे। चाय, शक्कर, प्याले, प्लेटें, माचिस कुछ भी नहीं भूली थी वह। स्नान घर में बाल्टी, मग, तौलिया, चौकी-सब व्यवस्थित ढंग से सजा हुआ था।''

थोड़ी देर में स्टोव की घरघराहट शुरू हुई। देखा, मीता चाय बना रही थी।

''माँ, चाय पी लीजिए।'' थोड़ी देर में वह मेरे सामने खड़ी थी। कमरे में आने के बाद से उसने पहली बार बात की थी और उसका स्वर अत्यंत सपाट था।

''चाय! यहाँ?'' मैंने एक बेमतलब-सा जुमला उठाया।

''तो कहाँ पिएँगी! क्या पापा को इस हालत में छोड़कर आप घर जाएँगी?''

उसकी बात में तर्क था पर उससे भी ज़्यादा वजनदार उसकी आवाज थी। मैंने चुपचाप प्याला होठों से लगा लिया। मेरे चाय लेते ही सबने जैसे राहत महसूस की, क्योंकि सभी थके हुए थे।

बहुत बेमन से प्याला उठाया था मैंने, पर सच कहूँ तो पीने के बाद जी एकदम हलका हो गया। सुबह से सिर भारी हो रहा था। यह भी थोड़ा उतर गया।

पाँच बजे के करीब उन्हें कुछ होश आया। मीता उनके पास ही बैठी हुई थी। उसे देखकर उतनी पीड़ा में भी वे थोड़ा-सा मुस्करा दिए। तब मुझे अहसास हुआा कि सचमुच उनकी यंत्रणा बहुत भीषण रही होगी। नहीं तो क्या ऑपरेशन से पहले एक बार भी अपनी लाड़ली बहू को याद न करते?

''पापा, आप और भैया अब घर जाइए।'' मीता का फरमान छूटा, ''रात को मेरा और माँ का खाना लेकर भैया आएगा। आप अब सुबह आइएगा।''

''मैं फल-फूल खा लूँगी।'' मैंने हल्का-सा प्रतिवाद किया।

''आपके लिए पक्का खाना बन जाएगा।'' उसने मेरी ओर बिना देखे जवाब दिया।

''वैसे बहनजी, चाहें तो हमारे साथ घर चलकर-।''

''पापा, प्लीज़!'' उसने जैसे सारे विवाद को समाप्त करते हुए कहा और उन दोनों को जबरन घर रवाना किया। फिर शिव के साथ बैठकर उसने सारे पर्चे पढ़े और फिर शिव को दवाइयाँ लाने भेज दिया और खुद इनके पलंग के पास स्टूल खींचकर बैठ गई।

दूसरे पलंग पर मैं चुपचाप पड़ी रही। बोलने की शक्ति ही नहीं रह गई थी। दो रातों का जागरण था, थकान थी, तनाव था। कब झपकी लग गई, पता ही नहीं चला। मीता ने खाने के लिए जगाया, तब जाकर आँख खुली।

समधीजी से रहा नहीं गया होगा। खाना लेकर खुद आ गए थे। बदले में लाड़ो की फटकार भी सुननी पड़ी। वे शिव का भी खाना लाए थे, पर मीता ने उसे अस्पताल में खाने नहीं दिया।

''तुम पापा के साथ घर जाओगे और सुबह परीक्षा के बाद ही यहाँ आओगे। समझे?''

''लेकिन भाभी-यहाँ-'' वह मिमियाया।

''यहाँ की चिंता मत करो। यहाँ मैं हूँ, माँ है, भैया है।''

शिव बहुत कुनकुनाया, आखिर उसे जाना ही पड़ा। उन लोगों को छोड़ने के लिए नरेशजी नीचे तक गए। मीता ने उनसे मेरे लिए पान मँगवाया। पान के बिना आज पूरा दिन हो गया था, पर मुझे याद ही नहीं आई थी। पर पता नहीं कैसे मीता जान गई थी।

खाने के बाद उसने मेरा बिस्तर ठीक किया। फिर स्नान घर में जाकर सारी प्लेटें-गिलास धो डाले। दूध एक बार फिर गरम किया और सोने की तैयारी करने लगी।

''भैया, बारह बजे तक मैं एक झपकी ले लूँ। फिर डयूटी पर आ जाऊँगी। फिर चाहे आप पूरी रात सोए रहना।'' उसने कहा और आराम-कुर्सी में हाथ का तकिया बनाकर लेट गई।

नरेशजी पलंग के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गए। मेरे आराम में ज़रा भी विघ्न न डालते हुए दोनों भाई-बहन रात भर डयूटी निभाने को तत्पर थे। मुझे कैसा तो लगा।

''मीता!'' मैंने स्नेहसिक्त स्वर में आवाज दी, ''भैया आराम-कुर्सी में लेट जायेंगे। तू इधर पलंग पर आ जाना, दिन-भर खड़ी की खड़ी है।''

पता नहीं मेरी आवाज में कुछ था या उसने प्रतिवाद नहीं करना चाहा। वह चुपचाप मेरे पास आकर लेट गई। ''आप सोने लगें तो मुझे जगा लीजिएगा भैया।'' उसने कहा और आँखें मूँद लीं। नरेशजी आराम-कुर्सी पलंग के पास खिसकाकर उसमें लेट गए। कमरे में एक अजीब-सी शांति छा गई।

मैंने मीता की ओर देखा। पता नहीं क्यों उसे देखकर मुझे सविता की याद हो आई। दो बच्चों की माँ हो गई है, पर

अब भी कभी-कभी उस पर बचपन सवार हो जाता है। माँ के पास लेटने का मोह हो आता है। उन क्षणों में वह एकदम नन्हीं सी बच्ची बन जाती है।

मेरे पास लेटी यह नन्ही-सी लड़की! इसका भी तो कभी-कभी मन होता होगा! तब किसके आँचल में मुँह छुपाती होगी! बड़ी बहन है, वह सात समन्दर पार इतनी दूर है। भाभी तो खुद ही लड़की है अभी।

वह मेरी ओर पीठ करके लेटी थी निस्पंद। सलवार-सूट उतारकर उसने नाइटी पहन ली थी। उसमें वह एकदम बच्ची-सी लग रही थी। दिनभर किसी उग्र तेज से दपदप करता उसका चेहरा अब एकदम निरीह, निष्पाप शिशु का-सा लग रहा था।

ममता का एक ज्वार-सा उठा मन में। एकदम उसे अंक में भर लेने की इच्छा हुई। पर संकोच में मैं बस उसकी पीठ पर, बालों पर हाथ फेरती रही।

अचानक मेरी उँगलियाँ उसकी पलकों को छू गईं। वे गीली थीं।

''क्या हुआ बेटे?'' मैंने प्यार से पूछा।

वह कुछ नहीं बोली। बस, जैसे रुलाई रोकने के लिए होंठ सख्ती से भींच लिए।

''अपने पापाजी के लिए परेशान हो? पर डॉक्टर साहब तो कह रहे थे, वे एकदम ठीक हैं। ऑपरेशन बहुत अच्छा हुआ है। बस, एक-दो दिन में उठकर बैठ जायेंगे। यही कह रहे थे न!'' कहते-कहते मैं भी शंकाकुल हो उठी।

वह एकदम पलटी। कुछ क्षण मुझे देखती रही, फिर मेरी छाती में मुँह छुपाकर सुबकते हुए बोली, ''पहले यह बताइए, आपने हमें खबर क्यों नहीं की?'' पापाजी इतने बीमार हो गए और किसी को मेरी याद भी न आई?

यही तो। अपने-आपको कटघरे में खड़ा करके मैं बार-बार पूछ रही थी-मुझे उसकी याद क्यों नहीं आई? अपनी बिटिया को कैसे भूल गई थी मैं?

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'स्नेहबंध' कहानी किन संबंधों पर आधारित है?
2. मीता से पहली भेंट पर उसकी सास पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. मीता के ससुरालवालों ने जात-पात की बजाय किन बातों को महत्व दिया था?
4. अपनी बिटिया को कैसे भूल गई थी मैं? इस वाक्य में बिटिया शब्द किसके लिए कहा गया है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ध्रुव ने मीता के पिता को किस प्रकार आश्वस्त किया?
2. शादियों में कुछ लोग किस उद्देश्य से जाते हैं? सबसे अधिक आलोचना किसे झेलनी पड़ती है?
3. मीता की सास को मीता की कौन-सी बातें खटकती थीं?

4. मीता के विदेश न जाने के पीछे क्या भावना थी?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ''हम लोग इतने दकियानूसी नहीं हैं कि एक आर्किटेक्ट लड़की में सोलहवीं सदी की बहू तलाशें।'' कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. 'स्नेहबंध' कहानी के माध्यम से लेखिका क्या कहना चाहती हैं?
3. कहानी के आधार पर मीता की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. उस प्रसंग का उल्लेख कीजिए जिसके कारण मीता की सास के व्यवहार में परिवर्तन आया?
5. मीता के रोने का क्या कारण था?
6. निम्नलिखित गद्यांश की संदर्भ व प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए :

   1. ममता का एक ज्वार.....निस्पंद पड़ी रही।

   2. कभी-कभार.....घुल रही है।
7. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव-विस्तार कीजिए :

   1. माँ की जीवनभर की साधना है।

   2. सभी सौजन्य और विनम्रता की मूर्ति बने थे।

   3. मन पर काँटे से उग आते हैं।

भाषा अध्ययन-

1. निम्नलिखित वाक्यों में प्रयुक्त मुहावरे छाँटकर लिखिए :-

   अ. पहली नज़र में उसका हुलिया देखा और मन खट्टा हो गया था।

   आ. उस समय तो सचमुच मेरा खून जल जाता पर मैंने किसी को हवा नहीं लगने दी।

   इ. प्रेम करते समय इन लोगों की अक्ल क्या घास चरने चली जाती है।

   ई. हमें नज़र मत लगाओ।

   उ. बहू को लेकर मन में कितनी कोमल कल्पनाएँ थीं, सब राख हो गईं।
2. निम्नलिखित शब्दों के सामने कुछ विकल्प दिए गए हैं, उनमें से सही विकल्प चुनकर लिखिए -

   1. स्ट्रेचर (हिन्दी, अंग्रेजी, देशज शब्द)

   2. नज़र (हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू शब्द)

   3. जीवन (तत्सम, तद्भव, देशज शब्द)

   4. माटी (तत्सम, विदेशी, देशज शब्द)
3. निम्नलिखित वाक्यों में अशुद्ध वर्तनी वाले शब्दों को शुद्ध करके लिखिए :

   क. लेकिन बहू घर में आति न थी।

ख. उसे परदरशन करने की क्या ज़रूरत थी?

ग. राम को यह सब सेहज-स्वाभाविक लगता था।

घ. पापा का स्वास्थ्य इन दीनों ठीक न था।

4. निम्नलिखित अनुच्छेद में यथास्थान विरामचिह्नों का प्रयोग कीजिए-

कभी कभार वह भी घर पर आ जाती पर पहले का सा तूफान नहीं करती हँसती खिलखिलाती पर उसमें पहले की सी जीवंतता नहीं थी जब वह चली जाती तो यह कहते कहा था साथ चली जाओ तब नहीं मानी पैसे का मुँह देखती रही अब मन ही मन घुल रही है

योग्यता विस्तार

1. मालती जोशी की अन्य कहानियाँ अपने विद्यालय के पुस्तकालय से प्राप्त करके पढ़िए।
2. वर्तमान में एकल परिवार का प्रचलन बढ़ता जा रहा है-इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।
3. जिनके पुत्र-पुत्रियाँ अपने वृद्ध माता-पिता को छोड़कर चले जाते हैं, उन्हें किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है? चर्चा कीजिए।
4. वर्तमान में कामकाजी महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनका उल्लेख कीजिए।

शब्दार्थ

इसरार - अनुरोध ***शिकन***- सलवट / बल पड़ना ***धींगामुश्ती*** - शरारत ***निस्पंद*** -शांत, स्वर-मुक्त ***अंक***-गोद ***कोंचना*** - ताने मारना ***तल्ख*** - कटु, कड़वा, तीखा, तीखापन ***कहकहा*** - हंसीमज़ाक़ के स्वर, ठहाके ***गुलजार*** - फूलों से भरे बाग की तरह, आनंदित वातावरण, प्रसन्नता से भरा, हरा-भरा, ***अदब-कायदा*** - विनीत या शिष्ट व्यवहार ***सरजाम*** - व्यवस्था ***कर्कश*** - तीखा स्वर ***तंद्रा*** - नींद ***अव्यक्त*** - जिसे व्यक्त न किया जाए ***अनमने*** - बिना मन के ***हुलिया*** - रंग-रूप ***करबद्ध निवेदन*** - हाथ जोड़कर की गई प्रार्थना ***आश्वस्त*** -भरोसा ***दकियानूसी*** -रूढ़िवादी ***आर्किटेक्ट*** - वास्तुकार ***सौजन्यपूर्ण***- सज्जनतापूर्ण ***आचार-संहिता*** - नियमावली ***मीनमेख*** - नुक्स दोष निकालना / मीन और मेष दो राशियाँ (मुहावरे के रूप में प्रयुक्त वाक्यांश) ***गद्गद्*** - प्रसन्न होना ***आग्नेय दृष्टि*** - कड़ी नज़र से देखना ***यंत्रणा***- कष्ट ***मिमियाना***- गिड़गिड़ाना ***प्रतिवाद*** - विरोध करना ***स्नेहसिक्त*** - प्रेम में डूबा हुआ।

***

मर्यादा

लेखक परिचय

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून सन् 1912 ई. को ग्राम-मीरनपुर, मुजफ्फर नगर उत्तरप्रदेश में हुआ। श्री विष्णु प्रभाकर मानवतावादी एकांकीकार हैं। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों मेंआपके साहित्य की मूलात्मा, आपका सहज मानव गुण है। इन्होंने यथार्थ के धरातल पर आदर्श की अवतारणा की है। मानव प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उनमें आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है। इनकी एकांकियों में मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न रुचियों, संस्कारों, भावनाओं और विचारधाराओं का मार्मिक चित्रण हुआ है।

श्री विष्णु प्रभाकर के एकांकियों को मुख्यत: छह भागों में बाँटा जा सकता है- (1) सामाजिक समस्या-प्रधान एकांकी इन एकांकियों में वर्तमान सामाजिक जटिलताओं पर प्रकाश डाला गया हैं। यथा 'बन्धन मुक्त पाप', 'प्रतिशोध','इन्सान', 'वीर-पूजा' 'देवताओं की घाटी', 'दूर और पास' आदि। (2) मनोवैज्ञानिक एकांकी- इन एकांकियों में पात्रों की अंत: प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। यथा 'भावना और संस्कार', 'ममता का विष', मैं दोषी नहीं हूँ, 'जज का फैसला', 'हत्या के बाद', 'माँ-बाप' आदि (3) राजनीतिक एकांकी-इन एकांकियों में देश की राजनीतिक उथल-पुथल राष्ट्रीय गौरव और स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न चित्र खींचे गये हैं। यथा-'हमारा

केन्द्रीय भाव:- 'मर्यादा' एकांकी की कथावस्तु में बिखरे हुए एक संयुक्त परिवार का चित्रण है। जगदीश एकांकी का प्रमुख पात्र और टूटे हुए संयुक्त परिवार का मुखिया है। उसके तीनों भाई प्रदीप, विनय एवं अशोक अपने-अपने स्वार्थों और सुविधाओं के चलते उससे अलग हो गये हैं। हर भाई सोचता है कि दूसरे भाइयों की अपेक्षा वह परिवार के लिए अधिक करता है। जगदीश भी कहीं अपने आप को भी इस अलगाव के लिए दोषी मानता है। संयुक्त परिवार के बिखरने का सबसे अधिक दुष्प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। इस वजह से वे संयुक्त परिवार के सामूहिक स्नेह तथा देखभाल से वंचित हो जाते हैं। सुमन और अनिल इस बात के उदाहरण हैं। जगदीश को अपनी सूझ-बूझ का कुछ घमंड है पर अपने भाइयों की अपेक्षा उसके मन में प्रेम और उदारता का भाव अधिक है। इसीलिए वह उनकी भूलों को क्षमा कर उन्हें पुन: एक होने का अवसर देता है। वह जानता है कि आज रामायण और महाभारत का युग नहीं है। पुरानी मर्यादाएँ क्षीण हो रही है। आज संयुक्त परिवार मात्र किसी एक व्यक्ति के त्याग-तपस्या, समर्पण, प्रभाव या आतंक पर टिके नहीं रह सकते। संयुक्त परिवार को सभी घटकों की सुख सुविधाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति का पर्याय बनाना होगा। उसके लिए नई मर्यादाएँ स्थापित करनी होगीं। निस्वार्थ प्रेम और स्वार्थमय इच्छाओं आवश्यकताओं के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करके ही संयुक्त परिवार को बनाए रखा जा सकता है। कठिनाई के समय सहयोग की भावना का होना अधिक महत्वपूर्ण है।

पात्र परिचय

जगदीश-परिवार का मुखिया-बड़ा भाई

मालती-जगदीश की पत्नी

प्रदीप- सबसे छोटा भाई

सुमन- प्रदीप की बेटी

रीता-मँझले भाई विनय की पत्नी

(प्रारम्भिक संगीत के बाद प्रभात का सूचना-सूचक संगीत, उसी में से पहरूए की आवाज उठती है, दूर से पास आती हुई।)

पहरूआ- बाबूजी.....(दूर द्वार पर खड़े-खड़े)

बाबूजी..... पाँच बज गए (दूर जाता स्वर)बाबूजी.....स्वर मिटते ही विद्रोह के स्वर उठते हैं। वे स्वप्न के स्वर हैं, जैसे दूर

स्वाधीनता संग्राम' (4) हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकी–इनमें कई प्रहसन रखे जा सकते हैं–यथा 'प्रो. लाल,' 'मूर्ख', 'पुस्तककीट', 'कार्यक्रम', आदि। (5) पौराणिक–ऐतिहासिक एकांकी–इनमें पुराण इतिहास को माध्यम बनाकर वर्तमान को प्रेरणा दी गई है। (6) प्रचारात्मक एकांकी–इनमें देश की सामयिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर गांधीवादी दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। यथा– 'पंचायत','नया काश्मीर', 'सर्वोदय' 'राजस्थान', स्वतंत्रता का अर्थ, 'समाज सेवा' आदि।

रेडियो रूपक लिखने में भी एकांकीकार को पर्याप्त सफलता मिली है। भाषा सरल, परिष्कृत और प्रभावपूर्ण है। कथोपकथन पात्रानुकूल एवं भावानुकूल हैं। इनके निम्नलिखित एकांकी संग्रह उल्लेखनीय हैं–
1. 'स्वाधीनता संग्राम', 2.'सरकारी नौकरी', 3. 'इन्सान' 4. 'संघर्ष के बाद', 5. 'प्रकाश और परछाई,' 6. 'गीत और गोली', 7. 'बारह एकांकी' आदि।

देश से उठ रहे हों।

1. **स्वर** – मैं अब किसी भी शर्त पर साथ नहीं रह सकता। नहीं, नहीं! मैं गुलाम नहीं बन सकता! मुझे अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है, मुझे अपने मन को मारना पड़ता है.....

2. **स्वर**– मेरे पति सबसे अधिक कमाते हैं। मेरे परिवार पर सबसे कम खर्च होता है। दूसरे मजे करते हैं। नहीं, नहीं! मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रहूँगी.....

3. **स्वर**– तो मैं भी न रहूँगा अधिक कमाने से क्या होता है, घर का सारा प्रबंध तो मैं ही करता हूँ। मैं न हूँ, तो सब तीन तेरह हो जाय। संभालो, मैं चला!

4. **स्वर**– वाह! एक को कमाने का घमण्ड है, दूसरे को परिश्रम का, तीसरे को डॉक्टरी का, पर यह कोई जानता कि यह घर मेरी सूझ–बूझ, मेरे प्रभाव के कारण चल रहा है। दूर–दूर तक मेरी पहुँच है। बड़े से बड़ा काम मैं देखते–देखते कर लेता हूँ.....

(ये स्वर तीव्र होते हैं तथा शीघ्रता से बोलते हैं)

मैं डॉक्टर हूँ.....मेरे पति बड़े वकील हैं....मैं प्रबन्ध करता हूँ.....मैं प्रभावशाली हूँ। नहीं, मैं साथ नहीं रहूँगा। नहीं, अभी, अभी। नहीं.....नहीं.....(मैं के स्वर तीव्रता से उठते हैं।)

जगदीश–(तीव्रता से) बन्द करो, चुप हो जाओ, मैं एक को भी नहीं जाने दूँगा। अभी नहीं जाने दूँगा, देखूँगा, कैसे कोई घर से दूर जाता है.... कैसे?

मालती–(दूर से घबराए हुए आती है) क्या बात है, क्या हुआ? (पास आकर) क्या है जी?

जगदीश–(जागकर हैरानी से) कौन मालो। तुम!

मालती – हाँ शायद आप सपना देख रहे थे। यह आपको क्या हुआ है रोज–रोज सपने क्यों देखते हैं? (नि:श्वास) कई महीने बीत गए अब उनके बारे में सोचने से क्या लाभ?

जगदीश– कुछ लाभ नहीं, सोचना भी नहीं चाहता। सोचता भी नहीं, पर कभी–कभी सपने आ ही जाते हैं।

मालती– (हँसकर) यूँ ही आ जाते हैं। मैं कहती हूँ कब तक ठगते रहोगे अपने आप को? सपने का, सोचने से जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जैसे बिना सोचे ही सपने आ जाते हैं, मैं पूछती हूँ.....

जगदीश –(क्रोध से) मालती.....

मालती– कितना ही कठोर बनने की कोशिश करो, कितना ही निर्मम बनो, पर मैं जानती हूँ.....

जगदीश – (क्रोध से) तुम क्या जानती हो?

मालती – यही कि आपका दिल रोता हैं

जगदीश– (नि:श्वास) मालो.....

मालती – क्यों चुप हो गए?

जगदीश– इसलिए कि दिल सचमुच रोता है, आज तो खास तौर पर रोता है।

मालती– आज खासतौर पर क्यों?

जगदीश– (धीरे से) मालो, आज सपने में मैंने अपनी आवाज सुन ली। वह आवाज बड़ी डरावनी थी।

मालती– (अचरज से) अपनी आवाज डरावनी आवाज। मैं समझी नहीं कि आप क्या कहना चाहते है?

जगदीश– कहना चाहता हूँ कि अब तक मैं समझता था कि मेरे सब भाई अलग होना चाहते थे, परन्तु मैं नहीं चाहता था।

मालती – तो इसमें गलत क्या हैं?

जगदीश– नहीं, नहीं! यह गलत है, झूठ है।

मालती– झूठ है।

जगदीश– हाँ, झूठ है बिल्कुल झूठ! अभी–अभी सपने में मैंने अपनी आवाज सुनी–(स्वप्न वाली आवाज) वाह! एक को कमाने का घमण्ड है, दूसरे को परिश्रम करने का, तीसरे को डॉक्टरी का, पर यह कोई नहीं जानता कि यह घर मेरी सूझ–बूझ, मेरे प्रभाव के कारण ही चल रहा है। दूर–दूर तक मेरी पहुँच है। बड़े से बड़ा काम मैं देखते–देखते करा लेता हूँ। मैं प्रभावशाली हूँ.....नहीं, नहीं मैं भी साथ नहीं रहूँगा, नहीं नहीं.....नहीं.... नहीं.....(समाप्त) मैंने यह आवाज सुनी, यह आवाज मेरी है।

मालती– है, तो इसमें झूठ क्या है? मैं बराबर कहती रही हूँ कि घर न कोरे धन से चलता है, न कोरे परिश्रम से। घर चलता है, सूझ–बूझ से अक्ल से....।

जगदीश – और वह सब मुझ में है। (जोर से हँसता है) स्वार्थी .....सब स्वार्थी .....सब अपने गुण देखते हैं। सब अपना भला सोचते है, लेकिन .....(एकदम)लेकिन जाने दो, जो हुआ अच्छा हुआ यही होना चाहिए था। आज के युग में कौन किसको बाँध कर रख सकता है? वह जमाने लद गए, जब एक का हुक्म चलता था। जब सब अपने मन को मारते थे....

मालती– अपना मन मारते नहीं थे, दूसरों का मन रखते थे। वे अपने लिए नहीं दूसरों के लिए, कुटुम्ब के लिए जीते थे। कुटुम्ब उनके लिए सब कुछ था। कुटुम्ब की आन उनकी आन थी।

जगदीश– आन वान जाने दो, बातों को जाने दो, जाकर अपनी रामायण पढ़ो...

मालती– वह तो पढ़ चुकी!

जगदीश– कहाँ? मैंने तो आवाज नहीं सुनी।

मालती– आवाज अब किसे सुनाती? अपने लिए पढ़नी थी, मन में पढ़ ली, खाना भी बना लिया है.....

जगदीश– बना लिया? (एकदम) हाँ, ठीक तो है (हँसकर) देख लो कितना शोर रहता था, अब कितनी जल्दी काम निपट जाता है। कितना अच्छा है!

(सुमन का पुकारते हुए आना)

सुमन– ताऊजी ....ताऊजी.....

जगदीश– कौन सुमन? सुमन इतने सवेरे.....

सुमन– ताऊजी, मैं रामायण सुनूँगी।

मालती– अरे तू रामायण सुनने आई, इतनी दूर से? वाह री मेरी भक्तिन (हँसती है)।

जगदीश– (हँसते हुए) पगली, अरे आज तुझे क्या सूझी? सवेरे इतनी दूर भाग कर आई! एक रामायण मँगवा लेती।

सुमन– मैं तो रोज कहती थी, पर पापा ने लाकर नहीं दी। कहते थे, तू पढ़ेगी रामायण, भाग यहाँ से.....

जगदीश – और तुम भाग आई!

सुमन– मुझे भगा दिया। पापा बहुत बुरे हैं हमें कुछ नहीं लाकर देते। ताऊजी मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगी।

जगदीश– नहीं जाएगी ?

हाँ, नहीं जाऊँगी।

मालती– पगली, चल तुझे रामायण सुनाऊँ। नहीं जाएगी तो कहाँ रहेगी?

सुमन – यहीं रहूँगी। वहाँ नहीं जाऊँगी। तुमने मुझे क्यों निकाला? क्यों?

(रो पड़ती है)

जगदीश – अरे, अरे, सुमन.....बेटी सुमन.....

मालती – अरे, अरे, तू रोती क्यों है?

सुमन – (पूर्वत:) आपने मुझे क्यों निकाला? क्यों? मैं नहीं जाऊँगी। मैं पापा–मम्मी के पास नहीं जाऊँगी?

जगदीश – हाँ,हाँ, जा। जा तू रामायण सुन, मैं तेरे बाप के पास जाता हूँ। वाह! बच्चे को इस तरह डाँटते हैं। क्या समझा है उसने। समझ लिया कि अलग हो गए तो जैसे मैं मर गया। कोई बात है..... वाह.... वा...

प्रदीप – भाई साहब! भाई साहब।

जगदीश– कौन प्रदीप? तू यहीं आ गया मैं तो तेरे पास ही आ रहा था।

प्रदीप– (पास आकर) क्यों? आप क्यों जा रहे थे? क्या आप के पास भी चिट्ठी आई है।

जगदीश – मेरे पास किसी की चिट्ठी नहीं आई। मेरे पास सुमन आई है, मैं कहता हूँ कि तुम लोगों ने समझा क्या है? तुम लोगों ने अलग होना चाहा, मैंने कोई आपत्ति नहीं की। तुम बच्चों को भी एक दूसरे का दुश्मन बना दो। मैं पूछता हूँ कि तुमने सुमन को क्यों मारा?.... यहाँ क्यों नहीं आने दिया?

(पृष्ठभूमि में रामायण का पाठ चलता है)

सरल सुभाय माँय हित लाए।

अति हित मनहुँ राम फिरि आए ।।

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई।

सोकु सनेहु न हृदय समाई॥

प्रदीप – भाई साहब, मैं क्या बताऊँ .....(एकदम) आप उसे यहीं रख लीजिए वह आपके बिना नहीं रह सकती।

जगदीश – और तुम्हे इस बात से दु:ख होता है। तुम उसे लेने आए तो, तुमने समझा क्या है? ले जाओ अपनी बेटी को! अभी ले जाओ!.....सुमन ....सुमन इधर आओ ।

प्रदीप – भाई साहब!

मालती– (आकर) क्या है, क्या कहते हो सुमन को। ओ, प्रदीप है? तुम सुमन को लेने आये हो शायद?

सुमन– मैं नहीं जाऊँगी मैं बिलकुल नहीं जाऊँगी। (अन्दर भाग जाती है)।

प्रदीप – भाई साहब मेरी तो सुनते नहीं मैं सुमन को लेने नहीं आया । उसे आप ही रखें, मुझे खुशी होगी। इन बच्चों की माँगों से तंग आ गया हूँ (गला भर आता है) मेरे पास पैसे कहाँ से हैं? पेट भरने लायक भी तो नहीं कमाता हूँ.....

जगदीश– और जैसे मैंने कुबेर का कोष इकट्ठा कर रखा है। मैं तो अपने आप ही रवि की पढ़ाई का खर्च नहीं दे पाता। वाह वा, अशोक और विनय डॉक्टर और वकील क्या थे, समझते थे, कि जैसे वे कमाते हैं, और हम खर्च करते हैं। अब जोड़ लें वे कारूँ का खजाना? मैं माँगने नहीं जाऊँगा..... !

प्रदीप – माँगना तो मैं भी नहीं चाहता भाई साहब! माँगू भी तो किस मुँह से? अकड़कर गया था, पर ....खैर जाने दो उन बातों को। डॉक्टर भईया का पत्र आया है।

जगदीश– किसका, विनय का पत्र आया है, तुम्हारे पास?

प्रदीप – जी हाँ, मेरे पास आया है, पर है आपके लिए!

मालती – क्यों इन्हें सीधे लिखते शर्म आती थी, या अब ये इतने छोटे हो गए कि .....

जगदीश – (तेजी से एकदम) मालती! तुम मत बोलो।

मालती– मैं क्यों न बोलूँ? सबसे पहले यही तो घर छोड़कर गया था डॉक्टरी के जोश में इसी ने तो मेरी बगिया को उजाड़ा, इसी ने ...

जगदीश – (एकदम) मालो....मालो ....तू मेरी दुखती रग न दुखा। उसका कोई अपराध नहीं है। आज के जमाने में लोग भेड़ बकरी नहीं है, उनके दिमाग है, वे सोचते हैं,.....समझते हैं। वे अपने पर निर्भर रहना चाहते हैं। दूसरों का सहारा लेना नहीं चाहते! .....हाँ प्रदीप! क्या लिखा है, विनय ने?

प्रदीप – उन्हें वजीफा मिल गया है।

जगदीश – वह तो मुझे मालूम है। तीन वर्ष के लिए वह अमेरिका जा रहा है।

मालती – हाँ, जरूरत पड़ी तो वह दो वर्ष और भी रह सकता है।

प्रदीप– भइया ! आप तो कहते हैं कि डॉक्टर भइया ने आपको कोई पत्र नहीं लिखा।

जगदीश – क्या तुम समझते ही कि वह लिखेगा, तभी मुझे पता लगेगा। वाह, तुमने समझा क्या हैं? बता सकता हूँ उसने तुम्हें क्या लिखा है? उसने लिखा है कि वह अपनी बहू और बच्चों को यहाँ छोड़कर जाना चाहता है। नहीं लिखा?

प्रदीप – लिखा तो यही है।

जगदीश – लिखा तो यही है (हँसता है) प्रदीप, उसे लिख दो कि वह निश्चिन्त होकर अमेरिका जाए। उसकी बहू और बच्चे मेरे पास रहेंगे।

प्रदीप – भइया!

मालती – क्या कहते हो? विनय के बहू-बच्चे यहाँ रहेगे?

जगदीश – और कहाँ रहेंगे.... तुम सोच में क्यों पड़ गए प्रदीप?

प्रदीप – जी,जी, नहीं। लिख दूँगा, पर .....

जगदीश– पर तुम कहना चाहते हो कि तुम्हारा गुजारा भी नहीं चलता तुम्हारा कुछ.....

प्रदीप– भइया, मैं क्या कहूँ, शर्म आती है।

जगदीश– शर्म आती है। वाह–वा, शर्म भी क्या पुरुषों का आभूषण है? अरे पागल, यह बड़ा अच्छा अवसर है तीन वर्ष के लिए तू भी यहाँ आ जा। आखिर उनकी देखभाल तो कोई करेगा ही। (हँसता है)फिर क्यों न .....

प्रदीप– (एकदम) भैया, आप तो हँसी करते हैं।

जगदीश – (जोर से हँसता है) सभी बड़े काम हँसी में आरंभ होते हैं। लेकिन खैर, तू नहीं आना चाहता तो न आ। पर सुमन अब मेरे पास रहेगी। चाहता है तो प्रकाश को भी भेज दे। क्यों सुमन रहेगी न? अरे कहाँ गई, ओह! रामायण सुन रही है।

(रामायण का स्वर स्पष्ट होता है)

मालती – कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा॥

बरबस लिए उठाय उर,लाय कृपा निधान।

भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहि अपान।।

मिलन प्रीति किमि जाय बखानी। कवि कुल अगम करम मन बानी।।

परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ।।

जगदीश– (निश्चयपूर्वक) रामायण मनुष्य की मर्यादाओं की मंजूषा। लेकिन आज रामायण का युग नहीं है। आज महाभारत का युग भी नहीं है, जब जड़ मर्यादाएँ तोड़ी गई थीं। आज तो मर्यादाओं को फिर से पहचानना है। फिर से .....

(रीता का तेजी से प्रवेश)

रीता– (दूर से) भाभीजी, भाभीजी!

जगदीश – कौन?

प्रदीप – यह तो अशोक की बहू की आवाज है।

रीता – (पास आकर) भाभीजी कहाँ है?

जगदीश – क्यों क्या बात है बहू? कैसे आई? तुम घबरा क्यों रही हो ?

मालती – (आती हुई) कौन, कौन घबरा रही है? रीता .....तुम ..... (गम्भीर स्वर में) क्या बात है?

रीता– (अवरूद्ध कंठ) भाभी, परसों अनिल छत से गिर पड़ा था।

प्रदीप व जगदीश – (घबराकर एक साथ) अनिल छत से गिर पड़ा? क्या कहती हो? अब तक बताया भी नहीं?

जगदीश – अरे बताओ न? अब उसका क्या हाल है?

रीता – हाल अच्छा नहीं है। भाई साहब, पैर की हड्डी टूट गई है। ढाई महीने प्लास्टर में रहेगा।

जगदीश – (खोया–खोया) अनिल का पैर टूट गया। मुझे पता तक नहीं (एकदम) वाह वा। तुमने समझा क्या है। मुझे जीते जी मार दिया।

रीता– भाई साहब वह परसों से आपको और अपने ताऊजी को पुकार रहा है। किसी की नहीं सुनता।

प्रदीप – और तुम उसे भुलाना चाहते हो। तुमने कहलवाया तक नहीं मैं अभी जाता हूँ ।

जगदीश – कहाँ जाता है इधर बैठ। (एकदम) लेकिन नहीं मैं भूल गया था। मैं किसी को रोकने वाला कौन? जा भाई,

मैं तो जीते जी मर गया .....

मालती – मरें तुम्हारे दुश्मन, ऐसा क्यों बोलते हो?

जगदीश – बोलने के सिवा और मेरे पास रहा है क्या है? अनिल मुझे पुकारता रहा, और उसकी आवाज मुझ तक पहुँचने ही नहीं दी गई। यह सब क्या हो गया? अलग होते ही हम सब दुश्मन हो गए।

रीता– भाई साहब! बात यह नहीं है, हम उसे अस्पताल ले गए थे। उन्हें तो आप जानते ही हैं कि एक क्षण की भी फुरसत नहीं मिलती। मुझे तो सभा सोसाइटियों का काम रहता है।.....

मालती – (एकदम) माँ को सभा –सोसाइटियों का काम रहता है। बाप को पैसा कमाने से फुरसत नहीं। तब औलाद की कौन देखभाल करे? भला, चार वर्ष का बच्चा, बिना अपनों के अस्पताल में कैसे रह सकता है?

रीता– यही तो बात है, रो–रोकर परेशान कर रहा है।

जगदीश – तो मैं क्या करूँ ?

रीता – कैसे कहूँ? आप उसके पास चलें और .....

जगदीश – और अस्पताल में रहें.....

रीता – नहीं नहीं, आप उसे.....

जगदीश – यहाँ ले आएँ। नहीं यह नहीं हो सकता। कुछ नहीं हो सकता मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम जानों तुम्हारा काम जाने। तुम स्वतंत्र हो। आत्म–निर्भर हो। दूसरों का सहारा क्यों लेते हो? दुर्बल हो जाओगे। जाओ!

रीता – भाई साहब!

जगदीश – भाई साहब! कौन भाई साहब? किसका भाई साहब! भाई साहब होता तो परसों ही मैं अनिल के पास होता। तुम तो सबसे अधिक कमाते हो, जाओ बच्चों को घर लाओ, एक नर्स रखो। एक नौकर रखो.....

रीता – नर्स भी है, और नौकर भी है पर .....

जगदीश – पर, माँ–बाप को फुरसत नहीं है कि बेटे के पास बैठें। आज के युग में जरूरत भी क्या है?

मालती – अब बस भी करो। प्रदीप, चल मैं चल रही हूँ। इन्हें बहकने दे। मैं अनिल को यहाँ लेकर आती हूँ। देखती हूँ मुझे कौन रोकता है ?

जगदीश – मैं रोक सकता हूँ, घर मेरा है!

मालती – घर तो तब भी तुम्हारा था, जब बाँट–बखेरा हुआ था। किसी को रोक सके।

जगदीश – मालो!

मालती – चलो, प्रदीप!

प्रदीप – चलो बहू! भाई साहब स्वयं उसे यहाँ लाना चाहते हैं। यह तो बनावटी क्रोध है!

रीता – (दूर जाते हुए) जानती हूँ। इन तीन दिनों में बहुत कुछ जान गई हूँ। जान गई हूँ कि पैसा सब कुछ नहीं हैं।

प्रदीप – (दूर से) ठीक कहती हो, बहू, कोई भी वस्तु अपने आप में सब कुछ नहीं है। (दूर जाते शब्द)

जगदीश – गए (हँसते हैं) वे भी समझते हैं।

सुमन – ताऊजी क्या अनिल यहाँ आएगा ?

जगदीश– (पूर्वतः) हाँ ।

सुमन – उसके चोट लग गई हैं।

जगदीश – हाँ! तू उसे प्यार करेगी न?

सुमन– मैं उसे बहुत प्यार करूँगी, वह बहुत अच्छा है।

जगदीश – और प्रकाश, मीना, मंजू, किशोर और इलाहाबाद वाली ताई और सुबीर, पप्पू, कुणाल, ये सब अच्छे नहीं हैं? इन्हें तू प्यार नहीं करेगी?

सुमन– क्या ये सब भी आयेंगे यहाँ.....?

जगदीश –हाँ, यहीं.....

सुमन – फिर कभी नहीं जाएँगे?

जगदीश – नहीं!

सुमन – अहा जी, अहा जी! तब तो बहुत अच्छा होगा। बहुत अच्छा! हम पहले की तरह खेलेंगे।

जगदीश – और बहुत खुश होगें! इसलिए और भी खुश होंगे कि अब वे सब अपनी इच्छा से आएँगे (सोचकर) अपनी इच्छा से (हँसता है) अपनी आवश्यकता के कारण, इच्छा .....आवश्यकता! आवश्यकता.....इच्छा!(खूब हँसता है) भोला इन्सान.....

सुमन – ताऊजी, आप इतने क्यों हँसते हैं?

जगदीश – क्यों हँसता हूँ? तू भी हँस सुमन! तू भी हँस! दोनों हँसते है खूब हँस ! अब हम किसी एक के नहीं होंगे। एक दूसरे के होंगे .....एक दूसरे के.....

अभ्यास

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'मर्यादा' एकांकी में निहित है –
   (अ) सामाजिक आदर्श (ब) पारिवारिक आदर्श
   (स) सांस्कृतिक आदर्श (द) धार्मिक आदर्श
2. इनमें से किस ग्रन्थ में पारिवारिक मर्यादा का सर्वोत्तम उदाहरण देखने को मिलता है –
   (अ) गीता (ब) रामायण (रामचरित मानस)
   (स) कामायनी (द) कठोपनिषद
3. संयुक्त परिवार की नींव है –
   (अ) सद्भाव और त्याग (ब) भाईचारा
   (स) परस्पर भावनाओं का सम्मान (द) उपर्युक्त सभी
4. परिवार चलता है –
   (अ) धन से (ब) परिश्रम से
   (स) सूझ–बूझ से (द) इन सबके सामंजस्य से
5. जोड़ी बनाइए –
   किसको किस चीज का घमंड था ?

जगदीश	डॉक्टर होने का
प्रदीप	सबसे अधिक कमाने का
विनय	सूझ-बूझ का
अशोक	परिश्रम का

6. सुमन जगदीश के घर किसलिए आई थी?
7. रीता अपने जेठ जी जगदीश के घर क्यों आई थी?
8. प्रदीप किस बात को कहने में शर्म अनुभव कर रहा था?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सपना देखने से पहले जगदीश क्या सोचता था?
3. प्राचीन संयुक्त परिवार के सदस्य किस प्रकार रहते थे?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बिखरे हुए परिवार को फिर एक होने में कौन-सी घटनाएँ सहायक सिद्ध होती हैं?
2. एकांकी में उल्लेखित चौपाइयों के आधार पर रामचन्द्र जी और भरतजी को भेंट का वर्णन कीजिए।
3. ''अब हम किसी एक के नहीं रहेंगे एक-दूसरे के होंगे'' इस कथन के आधार पर संयुक्त परिवार की आधार शिला को स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नांकित गद्यांशों की संदर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए -

   (अ) अपना मन नहीं .....उनकी आन थी।

   (आ) आज के जमाने .....लेना नहीं चाहते।
5. इन पंक्तियों का भाव पल्लवन कीजिए -

   (अ) आज तो मर्यादाओं को फिर से पहचानना है।

   (आ) वह जमाना लद गया जब एक का हुक्म चलता था।

   (इ) कोई भी वस्तु अपने आप में सबकुछ नहीं हैं।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी रूप लिखिए-

   गुलाम, खर्च, कोशिश, दुश्मन, चिट्ठी, औलाद, शर्म।
2. निम्नलिखित वाक्यांश के लिए एक शब्द लिखिए-

   (अ) जिसे जीता न जा सके

   (आ) जिसके समान दूसरा न हो

   (इ) जो परिश्रम करने वाला हो

   (ई) जिसका कोई शुल्क न देना पड़े

(उ) जिस स्त्री का पति मर गया हो

(ऊ) जिसका बहुत प्रभाव हो

3. नीचे कुछ शब्द और उनके विलोम दिए गए हैं आप शब्द और उनके विलोम की सही जोड़ी बनाइए–

कठोर, गलत, कोमल, सही, सबल, सच, दुर्बल, खाद्य, उन्नति, अवनति, अखाद्य, झूठ।

ध्यान से पढ़िए –

संयुक्त परिवार एक आदर्श परिवार माना जाता है, जिसमें परिवार के अन्य सदस्यों की सुख सुविधा के लिए सदस्य को अपना मन मारना पड़ता है। जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाते हैं उनके परिवार शीघ्र ही तीन तेरह हो जाते हैं। वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार के दिन लद गए हैं क्योंकि आज तो सब अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग अलापते हैं। वे एक दूसरे की भावनाओं को ठेस पहुँचाने में भी नहीं चूकते हैं। सामंजस्य न होने पर जब परिवार बिखर जाता है तो बाद में पछिताते हैं। यह तो वही बात है– अब पछिताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

उपर्युक्त अनुच्छेद में रेखांकित मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है–

मुहावरे–

मन को मारना, तीन–तेरह होना, दिन लदना, ठेस पहुँचाना।

लोकोक्तियाँ –

अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग।

अब पछिताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।

अब समझिए–

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की शक्ति है इनके प्रयोग भाषा के सम्प्रेषण में सरलता और सौन्दर्य आ जाता है और वह प्रभावी बन जाती है।

लोकोक्ति– लोक+उक्ति से लोकोक्ति शब्द की रचना हुई है। जन साधारण में प्रचलित लोक प्रिय उक्ति/कथन को लोकोक्ति कहते हैं। इसका प्रयोग–उपालम्भ देने, व्यंग्य करने, मीठी चुटकी लेने या अपने कथन को प्रभावित करने के लिए किया जाता है।

मुहावरा–

मुहावरा–जब कोई वाक्यांश अपना असली अर्थ छोड़कर किसी लाक्षणिक अर्थ को व्यक्त करता है, तो उसे मुहावरे की संज्ञा दी जाती हैं मुहावरा जिस रूप में होता है उसी रूप में रहता है अन्यथा भाषा की प्रभावोत्पादकता समाप्त हो जाती है।

मुहावरे और लोकोक्ति में अन्तर –

1. लोकोक्ति पूर्ण होती है जबकि मुहावरा वाक्यांश होता है।
2. लोकोक्ति पूर्ण स्वतंत्र होती है, जबकि मुहावरा पूर्ण स्वतंत्र नहीं होता।
3. लोकोक्ति को अपना भाव प्रकट करने के लिए वाक्यांश की आवश्यकता नहीं, जबकि मुहावरा किसी वाक्य या वाक्यांश के जुड़कर अपना भाव प्रकट करता है।
4. लोकोक्ति में क्रिया कभी प्रारंभ में रहती है, कभी मध्य में आ जाती है और कभी अन्त में जबकि मुहावरे में यह अंत में होती है पर सभी मुहावरों में क्रिया आवश्यक नहीं है।

4. निम्नलिखित लोकोक्तियों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए–

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, आम के आम गुठलियों के दाम, ऊँची दुकान फीका पकवान, खोदा पहाड़ निकली चुहिया, नाच न जाने आँगन टेड़ा।

5. निम्नलिखित गद्य पंक्तियों में यथा स्थान विराम–चिह्नों का प्रयोग कीजिए–

(अ) जगदीश तीव्रता से बन्द करो चुप हो जाओ मैं एक को भी नहीं जाने दूँगा अभी नहीं जाने दूँगा देखूँगा कैसे कोई घर से दूर जाता है– कैसे

(आ) जगदीश और प्रकाश मंजू किशोर और इलाहबाद वाली ताई और सुबीर पप्पू कुणाल ये सब अच्छे नहीं हैं इन्हें तू प्यार नहीं करेगी

6. निम्नलिखित शब्द–युग्मों के सामने कुछ विकल्प दिए गए हैं, आप सही विकल्प का चयन कीजिए–

(क) कभी – कभी – (सामासिक पद, द्विरूक्ति)

(ख) माँ–बाप – (द्विरूक्ति, सामासिक पद)

(ग) सूझ–बूझ – (अपूर्ण पुनरूक्त शब्द, पूर्ण पुनरूक्त शब्द)

(घ) देखते–देखते – (अपूर्ण पुनरूक्त शब्द, पूर्णपुनरूक्त शब्द)

योग्यता विस्तार

1. अपने सहपाठियों के साथ इस एकांकी का मंचन कीजिए ।
2. 'विष्णु प्रभाकर' के अन्य एकांकी पुस्तकालय से प्राप्त कर पढ़िए।
3. संयुक्त परिवार आज भी प्रांसगिक हैं। इस विषय पर वाद–विवाद प्रतियोगिता आयोजित कीजिए।
4. यदि आप घर के मुखिया हों तो अपने परिवार की सुख–शांति के लिए क्या करेंगे? लिखिए।

शब्दार्थ

पहरूए – पहरेदार **निः श्वास**– बहिर्मुख श्वास, लंबी श्वास, **ताड़ना** –डाँट फटकार, **सुभाय** –स्वभाव **कुबेर** – देवताओं के कोषाध्यक्ष, **कारूँ** – एक प्रसिद्ध राजा, मूसा का चचेरा भाई जो बहुत धनवान था पर बड़ा कंजूस था **मंजूषा** – पेटी **बिसराई**– भुलाई

***

कोणार्क

जीवन परिचय

जगदीश चंद्र माथुर

जगदीश चंद्र माथुर का जन्म 16 जुलाई सन् 1917 में उत्तरप्रदेश के खुर्जा नगर में हुआ। आपके ऊपर माता-पिता के त्याग तपस्या एवं संस्कारित जीवन का अमिट प्रभाव पड़ा।

नाटकों में विशेष रुचि होने के कारण छात्र जीवन से ही आपको रंगमंच के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। आपके प्रयास से ही विश्वविद्यालय के रंगमंच पर अभिनीत होने वाले हिन्दी नाटकों को गति मिली।

श्री जगदीश चंद्र माथुर बिहार राज्य के शिक्षा सचिव, आकाशवाणी के महानिदेशक, सूचना प्रसारण मंत्रालय के संयुक्त सचिव, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा नई दिल्ली के अध्यक्ष तथा केन्द्रीय गृह मंत्रालय में हिन्दी सलाहकार रहे।

नाटककार श्री जगदीशचंद्र माथुर 14 मई, सन् 1978 को दिव्य ज्योति में लीन हो गये।

कोणार्क, शारदीया, भोर का तारा, ओ मेरे सपने, दस तस्वीरें, बोलते क्षण व रीढ़ की हड्डी आदि उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए एकांकियों की भाषा तत्सम-प्रधान संस्कृतनिष्ठ है। वाक्य विन्यास दीर्घ है, लेकिन उनमें बोधगम्यता तथा सरलता है। भाषा सरल,

केन्द्रीय भाव-: कोणार्क का सूर्य मन्दिर उड़ीसा प्रान्त में पुरी के निकट समुद्रतट पर स्थित है। कोणार्क मात्र एक भौतिक स्मारक नहीं; बल्कि भारत के सांस्कृतिक वैभव की धरोहर भी है। कोणार्क मन्दिर भगवान भास्कर (सूर्य) के विशाल रथ के प्रतिरूप में निर्मित है। प्रस्तुत एकांकी में इस मन्दिर के कलश स्थापन के समय आए व्यवधान-काल का चित्रण है। एकांकी में कोणार्क मन्दिर के निर्माण की पृष्ठभूमि और प्रेरणा के साथ - साथ उसके शिल्प तथा शिल्पियों के मनोभावों का भी उल्लेख किया गया है। कोणार्क के शिल्प में मानवीय ही नहीं, जीवन का मूर्तिमय अंकन है। इसमें लोकरंजन ही नहीं, जीवन का आदि और उत्कर्ष भी समाहित है। एकांकी का चरमबिन्दु है महादण्डपाशिक की वह क्रूर आज्ञा जिसमें कलश स्थापित न होने पर शिल्पियों के हाथ काटने का दंड निश्चित किया गया है। एकांकी में तत्कालीन सामाजिक और राजव्यवस्था की झलक भी दिखाई देती है। एकांकी का अंत सुखद है।

एक कक्ष का भीतरी भाग। मन्दिर की विशाल चहारदीवारी के भीतर मुख्य मंदिर से लगभग पचास गज दक्षिण-पूर्व की ओर एक भोग मन्दिर है। यह कमरा उसी में स्थित है और मन्दिर के निर्माण के दिनों में महाशिल्पी विशु का निवास - स्थान है । सामने तीन द्वार हैं; जिनमें से बीचवाले को छोड़कर बाकी दोनों खिड़की जान पड़ती हैं। खिड़की के बराबर स्तम्भ हैं। खिड़कियों और सामने वाले द्वार में से मुख्य मंदिर और जगमोहन की झलक दिखायी पड़ती है - पूरी झलक नहीं, सिर्फ मेधि से ऊपर और छत्र से नीचे का वेश जिस पर अंकित कुछ सुन्दर मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । मन्दिर की यह झलक जितनी सजावटपूर्ण है, उसकी अपेक्षाकृत महाशिल्पी का निवास स्थान, यह कमरा अत्यन्त सादा और अलंकार विहीन है। इधर-उधर कुछ आधी उत्कीर्ण मूर्तियाँ पड़ी हैं। कुछ पाषाण खण्ड रखे हैं, जिन पर की गई खुदाई नजर पड़ रही है। कुछ छैनियाँ और अन्य औजार भी पड़े हैं। बाँयी खिड़की के पास एक लम्बी चौकी रखी है, जिसके सिरहाने की तरफ लकड़ी की ऊँची पीठ है, जैसी कि अक्सर प्राचीन सिंहासनों में हुआ करती थी। चौकी पर एक सादा कालीन बिछा है। चौकी पर भारी चिन्तित अवस्था में बैठे हैं महाशिल्पी विशु। उनके हाथ चौकी की पीठ पर हैं और हाथों पर ठुड्डी है। हमें उनका पूरा मुख नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि उनकी दृष्टि बीच वाले द्वार में होती हुई मुख्य मन्दिर पर पड़ी हुई है। कमरे में आने का एक द्वार दाहिनी तरफ भी है और इस दृश्य में अधिकतर अभिनेता इसी द्वार से आते-जाते हैं। इस समय इस द्वार के निकट कोणार्क के

सहज एवं प्रवाहपूर्ण है।

नाटको एवं एकांकियों में नए-नए विषयों को लिया गया है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी, आधुनिक युग के सफल नाटककार एवं एकांकीकार श्री जगदीशचंद्र माथुर का हिन्दी के नाटककारों में विशिष्ट स्थान है।

प्रधान पाषाण-कोर्त्तक राजीव खड़े हैं। ऐसा मालूम होता है कि अभी बाहर से आए हैं और उन्होंने कुछ कहना समाप्त किया है।

बातचीत के बीच में कभी-कभी मन्दिर की तरफ से पत्थर पर खुदाई की आवाज आती है, जिसमें मालूम होता है कि काम जारी है।]

विशु : कब? आखिर कब हम अम्ल के ऊपर त्रिपटधर को स्थापित कर पाएँगे? आज दस रोज हो गए, केवल इसी के कारण मूर्ति का प्रतिष्ठापन नहीं हो रहा है। (राजीव की ओर मुँह करके) राजीव, तुम कहते हो कि तुमने कलश के अधोअंश को और हल्का कर दिया?

राजीव: हाँ, फिर भी कलश ठहर नहीं पाया । मैंने अम्ल के हर एक अनुपात को फिर से नापा । कहीं कमी नहीं।

विशु : छप्र के ऊपर वाली भूमि के जोड़ तो ठीक हैं न ?

राजीव: वे सब जोड़ तो आप ही ने अपने हाथों से स्थापित किए थे।

विशु: जानता हूँ । लेकिन मन्दिर की महती कल्पना मेरी बुद्धि के परे हो चली है। मुझे न मालूम था कि सूर्यदेव के जिस विशाल वाहन का स्वप्न मैं देखा करता था, वह सच्चा होते -होते इस पार्थिव धरातल से उठकर भगवान भास्कर के चरण छूने के लिए उतावला हो उठेगा।

राजीव: राजनगरी के ज्योतिषी भानुदत्त का कहना है .....

[नेपथ्य में निकट आते नूपुरों की ध्वनि। सौम्य श्री का प्रवेश। सिर पर उष्णीय, कानों में मकरकुंडल, गले में हार, हाथों में मंजीर - मानो विशेषत: तैयार होकर आए हों।]

सौम्य : यह ठीक रहेगा न विशु? (अपने वेश-भूषा को दिखाते हैं।).....
कोई कमी तो नहीं है, नाट्याचार्य की वेश-भूषा में?

राजीव : हाथों में वीरशृंखला कहाँ है, तात सौम्य श्री?

सौम्य : इतना भी नहीं समझे राजीव? हाथों में मंजीर देखते हो ? मंजीर बजाने की भंगिमा यदि नहीं हो तो वह नाट्याचार्य की मूर्ति क्यों कर लगेगी? और यदि मंजीर बजाना है तो सुवर्ण-श्रृंखला कलाइयों मे कैसे ठहर सकती है?

राजीव : समझा तात।

सौम्य : लेकिन तुम्हारा क्या विचार है विशु? हाथों को कटक मुद्रा में रखूँ न? यह देखो, बाएँ हाथ में मंजीर को उल्टा करके इस तरह रखूँगा। (बाएँ हाथ वाली मंजीर को वृक्ष से लगाकर उलट कर रखता है।) और दायें हाथ को ऊपर से कटक मुद्रा में इस तरह (दिखाता है।)-मानो मंजीर बजाकर मैं नर्तकियों को संकेत दे रहा हूँ। ठीक है न? - (विशु को चुप और ध्यानमग्न देख कर रुक जाता है।) मामला क्या है विशु ?

विशु : (राजीव से) ज्योतिषी क्या कहता है, राजीव?

राजीव : कहता है कोणार्क देवालय ज्यों ही पूरा होगा त्यों ही इसके पत्थरों में पंख लग जाएँगे और सारा

मन्दिर आकाश में उड़ जाएगा।.....

सौम्य : मैंने भी सुनी थी वह भविष्यवाणी । लेकिन एक परिवर्तन चाहता हूँ।

राजीव : वह क्या तात सौम्य श्री?

सौम्य : मन्दिर उड़ेगा नहीं। नाट्याचार्य सौम्यश्री के संकेत पर जब नट-मन्दिर में देवदासियाँ नृत्य करेंगी, तो ताल देने के लिए कोणार्क देवालय ही थिरक उठेगा!

ताथेई, ताथेई था.....

[नृत्यभंगिमा में पदक्षेप करता है।]

विशु : परिहास की बात नहीं है बन्धु!

सौम्य : विशु, तो क्या तुम सच मानते हो कि कोणार्क के ये भारी पत्थर, ये विशालकाय मूर्तियाँ गगनगामी हो जाएँगी?

विशु : (**विचारपूर्ण मुद्रा**)कह नहीं सकता। पर एक बात अवश्य है । हमने पत्थर में जान डाल दी है, उसे गति दे दी है। (**सोत्साह**) वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मंदिर आज कल्पना के स्पर्श से हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन ..... लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है, ईर्ष्या से ।..... मुझे लगता है, जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।

सौम्य : पृथ्वी और आकाश के संघर्ष की बात फिर सोचना विशु। उत्कर्ष के पृथ्वीपति की क्रोधाग्नि झेलने का भी कोई प्रबंध किया है?

विशु : महाराज श्री नरसिंहदेव की क्रोधाग्नि? उसे तो करुणा की फुहारें क्षण भर में शान्त कर देती हैं।

सौम्य : लेकिन वही फुहारें जब गर्म तवे पर पड़ती हैं, तो उसकी जलन और भी बढ़ जाती है और फुहारें छू-मन्तर हो जाती हैं ।

विशु : तुम्हारा मतलब ?

सौम्य : उत्कल नरेश का क्रोध चाहे चाहे क्षणिक भले ही हो, लेकिन महामात्य राजराज चालुक्य उसे प्रज्ज्वलित रखते हैं और उन्होंने दया से पसीजना नहीं सीखा है।

विशु : महामात्य चालुक्य राज्य के सब कुछ नहीं हैं।

सौम्य : तुम भ्रम में हों, बंधु! महाराज नरसिंहदेव तो बंगप्रदेश में यवन को पराजित करने में लगे हैं और लोग कहते हैं, राजनगरी में महामात्य ही आजकल सर्वेसर्वा हैं।

राजीव : तात, दूर -दूर से आने वाले शिल्पी, महामात्य द्वारा किए गए अत्याचारों के समाचार लाते हैं । उनमें से कितनों ही के कुटुम्बों पर महामात्य के अन्याय का हथौड़ा पड़ चुका है। दिन-प्रतिदिन तरह-तरह की आशंकाजनक खबरें आ रहीं हैं ।

सौम्य : सुना है अब तो महादण्डपाशिक के सब अधिकार भी उन्होंने हथिया लिए हैं ।

राजीव : तब तो सारे दण्डपाशिक सैनिक उनके अधीन होंगे।

सौम्य : वही तो । राज्य सेना तो बंगप्रदेश में यवनों से लड़ रही है और इधर दण्डपाशिक सैनिकों के

बल पर महामात्य की शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

विशु : किसी की शक्ति बढ़े और किसी की घटे हमें तो कोणार्क को पूरा करना है।

राजीव : यदि आप धर्मपद की बात सुनें तो शायद अपना विचार बदल डालें, तात!

सौम्य : धर्मपद कौन ?

राजीव : एक किशोर शिल्पी। हाल ही में आया है। आयु तो अल्प है – शायद 16 वर्ष भी नहीं, किन्तु बुद्धि तीक्ष्ण । आपसे मिलना भी चाहता है।

विशु : क्यों?

राजीव : साफ नहीं बताता। विचित्र जीव है। कभी तो मौन हो मन्दिर के कलश की ओर निर्निमेष देखता रहता है और कभी भी अल्प समय में ही चमत्कारपूर्ण मूर्तियाँ तैयार कर देता है। कीर्तिस्तम्भ पर गायकों के रूप उसी ने उत्कीर्ण किये हैं।

विशु : एक 16 वर्ष के किशोर ने ? राजीव, मैं उससे मिलूँगा।

राजीव : कहिए तो अभी बुला लाऊँ? तात, उसकी ओजमयी वाणी में आपको विस्मृत विद्रोह का ताप मिलेगा।

विशु : शिल्पी को विद्रोह की वाणी नहीं चाहिए, राजीव मेरी कला में जीवन का प्रतिबिम्ब और उसके विरुद्ध विद्रोह दोनों सन्निहित हैं। तुम उस किशोर को बुला लाओ। मेरी दृष्टि के स्पर्श से उसकी प्रतिभा की गंध जाग्रत होकर उसकी वाणी को मौन कर देगी। मुझे उसकी कला चाहिए।

[राजीव का प्रस्थान]

सौम्य : मुझे भी उसकी कला चाहिए ।

विशु : क्या उसे नृत्य-संगीत सिखाओगे बन्धु?

सौम्य : नहीं। ..... सोचता हूँ मेरी मूर्ति तुम तो पूरा करने से रहे ! इधर मैं तैयार खड़ा हूँ । यह प्रतिभावान् किशोर ही पूरा कर देगा।

विशु : यह कैसे हो सकता है ? लाओ अभी पूरा करता हूँ। (छैनी हथौड़ी से प्रस्तरखंड पर अधूरी मूर्ति को पूरा करने में लग जाता है। सौम्य श्री को कभी-कभी सिर उठाकर देखता जाता है। सौम्यश्री तत्पर मुद्रा में खड़ा है।)

सौम्य : कितनी देर वेश – भूषा में खड़ा रहना पड़ेगा?

विशु : थोड़ी ही देर । ..... जल्दी है ?

सौम्य : नहीं। ..... प्रतिष्ठापन में जितनी ही देरी हो रही है उतना ही समय मुझे मिल जाता है, संगीतक की तैयारी के लिए।

विशु : सौमू, अगर कोणार्क पूरा नहीं हुआ तो उसे नष्ट करना होगा। और मुझे पातकी का प्रायश्चित!

सौम्य : शिल्पी, तुम विष्णु हो, शंकर नहीं। निर्माता हो संहारक नहीं। और फिर ये स्तम्भ और ये पाषाण इन्हें तो भूकम्प ही गिरा सकते हैं, अथवा काल की गति।

विशु : सौमू, जिन चुम्बक पत्थरों के आकर्षण से, सूर्य भगवान की मूर्ति निराधार स्थित है, तुमने उन्हें

ध्यान से देखा है?

सौम्य : क्या उनमें भूकम्प की शक्ति भरी है?

विशु : सुनो एक रहस्य की बात। ठीक बीच में जो चुम्बक है उससे ही मूर्ति बड़े वेग से गिर पड़ेगी और भूकम्प की भाँति ही मन्दिर की शिलाएँ और स्तम्भ गिरने लगेंगे, और–

[राजीव का प्रवेश। साथ में एक और युवक । आयु लगभग 18 वर्ष । साँवला रंग। उसके दृढ़ कपोल, तेजोमीय आँखें, घुँघराले बाल घोषित करते हैं कि वह असाधारण वृत्ति का व्यक्ति है। तंग अंगरखा और ऊँची धोती पहने है। राजीव के पीछे-पीछे आकर द्वार के निकट खड़ा होता है। जब विशु से बातें करता है, तब उसकी दृष्टि मानो विशु की काया के नीचे अन्तर्निहित किसी पुरातन विशु को खोजती है।]

राजीव : आचार्य, यही वह युवक है–धर्मपद।

विशु : तुम। (धर्मपद प्रणाम करता है) सुना है तुम आशु शिल्पी हों। इतनी छोटी आयु में तुम्हें किस गुरु ने दीक्षा दी?

धर्मपद : किसी ने नहीं आचार्य । मैं शिल्पी बना, क्योंकि मुझे जीवित रहना था।

विशु : कला तुम्हारा जीवन है, यही न?

धर्मपद : जीवन भी है और जीवन–यापन का साधन भी।

विशु : वह सारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। देखो हमारे कोणार्क देवालय को आँखें भरकर देखो। यह मंदिर नहीं सारे जीवन की गति का रूपक है। हमने जो मूर्तियाँ इसके स्तम्भों, इसकी उपपीठ अधिस्थान में अंकित की हैं उन्हें ध्यान से देखो। देखते हो, उनमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही तो जीवन है।

धर्मपद : क्षमा करें आचार्य, शृंगार–मूर्तियों को देखते–देखते मैं अघा गया हूँ।

सौम्य : अभी से? हँ–हँ। युवक,किसी रमणी के सामने यह बात न कह देना, नहीं तो तुम्हें अविवाहित रहना पड़ेगा।

विशु : (गंभीर होकर) तो तुम उन लोगों में हो जो इन प्रणय –मूर्तियों में अश्लीलता देखते हैं, जीवन का आदि और उत्कर्ष नहीं?

धर्मपद : जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक ओर सीढ़ी है–जीवन का पुरुषार्थ। अपराध क्षमा हो आचार्य, आपकी कला उस पुरुषार्थ को भूल गई है। जब मैं इन मूर्तियों में बँधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ तो मुझे याद आती है पसीनेमें नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेने वाले मल्लाह की, दिन–दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की। ... इनके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य!

विशु : लेकिन कला नहीं। कला की पूर्ति चयन में है– छाँटने में। जंगल में तरह–तरह के फूल, पौधे, वृक्ष चाहे जहाँ उगे रहते हैं, लेकिन उपवन में माली छाँट–छाँटकर सुन्दर और मनमोहक पौधों और वृक्षों को ही रखता है।

धर्मपद : छाँटनेवाली आँखों का खेल है, आचार्य। आज के शिल्पी की आँखें वहाँ नहीं पड़ती, जहाँ धूल में हीरे छिपे पड़े हैं।

राजीव : मैं ठीक कहता था न, तात धर्मपद तर्क निपुण है?

धर्मपद : मै तर्क करने नहीं आया हूँ । मैं तो एक ऐसे संसार की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ जो कि आपके निकट होते हुए भी आपकी आँखों से ओझल हो गया है। इस मंदिर में वर्षों से 1200 से अधिक शिल्पी काम कर रहे हैं। इनमें से कितनो की पीड़ा से आप परिचित हैं? जानते हैं आप कि महामात्य के भृत्यों ने इनमें से बहुतों की जमीन छीन ली है; कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पड़ रहा है, और उधर सारे उत्कल में अकाल पड़ रहा है।

विशु : तुम समझते हो कि हम लोगों को यह सब मालूम नहीं है लेकिन राज्य की बातों में पड़ना शिल्पियों के लिए अनुचित है।

[बाहर दाहिनी ओर कुछ हलचल, मानो दूर पर अश्वारोही आ रहे हों। राजीव बाहर जाता ।]

धर्मपद: मगर यह भी तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ़ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाता रहे। अगर मुझे महाशिल्पी के अधिकार मिले होते तो–

सौम्य : तो तुम कोणार्क को अब तक कभी का पूरा कर चुके होते हँ.....हँ.....हँ.....(अविश्वास का हास्य)

धर्मपद : पूरा करना अब भी कठिन नहीं।

[बाहर कोलाहल बढ़ रहा है]

सौम्य क्या? धर्मपद, तुम भूल रहे हो कि तुम महाशिल्पी आचार्य विशु के सामने खड़े हो । पिछले दस दिन से निरंतर चेष्टा करने पर भी ये मंदिर पर कलश स्थापित नहीं कर सके और तुम–शास्त्रीय अध्ययन और अनुभव से शून्य–तुम कहते हो, इसे पूरा करना कठिन नहीं। अपनी शक्ति से बाहर की बात न करो युवक!

विशु : (जो अब तक मौन हो इस वार्तालाप को सुनता रहा है) नहीं सौम्य मुकुन्द उसे अपनी बात कहने दो, बोलो युवक, क्या तुम अम्ल के ऊपर शिखर को स्थापित कर सकते हो? करोगे? ..... सोच समझकर उत्तर दो। यह साधारण समस्या नहीं है।

[इतनें में कोलाहल बहुत बढ़ जाता है। तेजी के साथ राजीव का प्रवेश]

राजीव : (हाँफते हुए) आचार्य! महामात्य चालुक्य आ रहे हैं।

विशु :
सौम्य : } चालुक्य ! !
धर्मपद :

विशु : चालुक्य ? यहाँ आ रहे हैं, बिना पूर्व – सूचना दिए?

राजीव : जी हाँ। कई अश्वारोही साथ हैं (बाहर तुरही की आवाज) सुनिए!

[दूर से उच्च स्वर में प्रतिहारी बोलता है – ''सावधान, सावधान, श्री माहामात्य महादण्डपाशिक राजराज चालुक्य पधारते हैं, सावधान!'']

सौम्य : महादण्डपाशिक ! सुना तुमने, विशु ? (खिड़की से झाँकता है)

विशु : ऐसी जल्दी में महामात्य का हम यथोचित स्वागत कैसे कर सकते हैं ? राजीव, अन्दर से वेत्रासन तो ले आओ! (राजीव बांयी तरफ जाता है और एक वेत्रासन लेकर लौटता है)युवक, तनिक इस तोशक और चादर को भलीभाँति रख दो (धर्मपद चौकी के दो तोशक इत्यादि को ठीक करता है) सौम्य, महामात्य प्राचीर के अन्दर आ गए?

सौम्य : **(खिड़की से मुँह हटाते हुए)** वे यहीं सीधे आ रहे हैं, विशु! (रुककर) महामात्य का इस तरह सहसा आना मुझे अच्छा नहीं लगता, विशु!

[नेपथ्य में निकट आता हुआ '' स्वर सावधान, सावधान'']

राजीव : आचार्य ! वे आ गए–

[दो प्रतिहारियों का प्रवेश । प्राचीन भटों का वेश, कंधों पर गदा या खड्ग। अन्दर आकर द्वार के दोनों ओर खड़े हो जाते हैं उसके बाद महामंत्री चालुक्य आते हैं। पुष्टकाय, आयु लगभग 45, मुख पर क्रूर मुद्रा, बड़ी-बड़ी मूँछें। नेत्र छोटे हैं और बातें करते समय और संकुचित लगते हैं। बातचीत के वक्त भौहें सुकड़ जाती हैं और बाएँ हाथ से ठुड्डी सहलाते भी हैं। पोशाक पुराने ढंग से बाँधी हुई धोती, रेशमी उत्तरीय, सुवर्ण मस्तक पर, बाजू पर एक बाजूबंद, कमर में कटार। उत्तरीय कुछ लटक रहा है और एक हाथ से उसे पकड़ते हुए वेग से अंदर आते हैं। और अभ्यर्थना की उपेक्षा करते हुए बैठ जाते हैं। धर्म पद बीच वाले दरवाजे के पास खड़ा है। सौम्य श्री खिड़की के पास, राजीव दरवाजे के निकट और विशु सबके बीच में कुछ आगे सभी लोग झुककर महामात्य को प्रणाम करते हैं। कुछ क्षण के लिए स्तब्धता।]

चालुक्यः (कमरे के सभी व्यक्तियों पर सरसरी निगाह डालकर फिर विशु पर आँखें ठहरा देते हैं) तुम जानते हो मैं क्यों इस तरह सहसा आया हूँ?

विशु : आर्य के आने की कोई पूर्व सूचना नहीं मिली–

चालुक्यः सूचना देता, तो तुम लोगों का भंडा फोड़ कैसे होता?

विशु : जी?

चालुक्यः राजनगरी में मैंने ठीक सुना था कि कोणार्क में राज्य कोष नष्ट हो रहा है। न शिल्पी लोग ठीक काम कर रहे हैं न मजदूर। दस दिन हो गए कलश तक स्थापित न हो सका।

विशु : हम लोग बराबर उसी चेष्टा में लगे हुए हैं।

चालुक्यः (मुँह बनाते हुए) चेष्टा में लगे हुए हैं।..... यहाँ तो मैं देखता हूँ गप्पें हो रही हैं। (सहसा धर्मपद पर दृष्टि पड़ जाती है) बातें करते हुए और यह युवक यहाँ क्यों खड़ा है।

धर्मपदः मैं? आचार्य के सामने शिल्पियों की दुख गाथा कह रहा था।

चालुक्यः शिल्पियों की दुख गाथा?

प्रतिहारी, इसे धक्का देकर निकालो। मुफ़्तखोर कहीं का।

धर्मपदः मैं आप ही जाता हूँ। (बीच वाले दरवाजे से प्रस्थान, आहत अभिमान की मुद्रा)

विशुः महामंत्री, आपके शब्द बहुत कटु हैं। उसे तो मैंने ही–

चालुक्यः कटु शब्द। (पैशाचिक हास्य) अब कटु शब्दों से काम नहीं चलेगा विशु। मैंने सुना है कि

शिल्पी लोग राज्य के विरुद्ध सिर उठा रहे हैं, सुवर्ण मुद्राओं में वेतन माँगते हैं, और–

सौम्यः महामात्य, आपको किसी ने बढ़ाकर ख़बर दी है। सुवर्ण मुद्रा भला ये बेचारे क्या माँगेंगे।

हाँ, यह अवश्य है कि इस अकाल के समय उनके कुटुम्बों पर महान कष्ट आ पड़ा है।

चालुक्य : देखता हूँ नाट्याचार्य, तुम भी इन लोगों से मिले हुए हो। मन्दिर पूरा होना तो अलग रहा, यहाँ– तुम लोग मिलकर राज्य पर दबाव डालने के लिए अभिसन्धि कर रहे हो । इसे –

विशु : महामंत्री मेरी भी सुनिए–

चालुक्यः चुप रहो। मैं तुम जैसे लोगों को राह पर लाने की युक्ति भली भाँति जानता हूँ (खड़ा हो जाता है) विशु, वर्षों से बिन माँगी प्रशंसा सुनते–सुनते तुम अपने को दण्डविधान से परे समझने लगे हो। आज मैं तुम्हारे इस घमण्ड को चूर करने ही आया हूँ ..... सुन लो और कान खोलकर सुन लो । आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ, तो (कुछ रुककर, शब्दों पर जोर देते हुए) तुम लोगों के हाथ काट दिए जाएँगे।

[भयाकान्त नीरव]

विशु : (अविश्वासपूर्ण स्वर में) शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे?

चालुक्यः (सरोष) हाँ, शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे आज से आठवें रोज या तो मन्दिर में सूर्यदेव की मूर्ति का प्रतिष्ठापन होगा या तुम बारह सौ व्यक्तियों की भुजाओं पर प्रहार। (द्वार की ओर बढता है, प्रतिहारी भी प्रस्थानोन्मुख होते हैं।)

चालुक्यः (रुकता हुआ) हाँ, हाँ। महाराज नरसिंहदेव की आज्ञा है। ..... और मेरी, महादण्डपाशिक की आज्ञा है (चलते समय सब लोगों पर क्रूर दृष्टि डालते हुए) उत्कल – नरेश ..... । हूँ।

[प्रस्थान । पदचाप। थोड़ी देर बाद नेपथ्य से दूर होता हुआ स्वर ''सावधान, सावधान महादण्डपाशिक राजराज चालुक्य पधारते हैं। – सावधान, सावधान'' ..... स्वर मन्द हो जाता है इधर मंच पर सब लोग चुप खड़े हैं--चिंतित]

राजीव : (नीरव तोड़ते हुए भीत स्वर में) अब क्या होगा?

[विशु अचेतन सा चौकी पर बैठ जाता है]

सौम्य : राजनगरी में अपराधियों के हाथ कटते मैंने देखे हैं। बड़ी पीड़ा होती है।

विशु : (मानो सपने में) उत्कल नरेश की आज्ञा? महाराज मेरी बरसों की सेवाओं पर इतना भीषण कुठाराघात करेंगे।

सौम्य : क्या मालूम उत्कल नरेश की आज्ञा है, या महामात्य का अपना उत्पात! हमारे पास साधन भी नहीं, समय भी तो नहीं कि ? महाराज के मन की बात जान सकें। वे अभी तक बंग विजय के उपरांत लौटे भी नहीं है।

राजीव : सात दिन ! – केवल सात दिवस के बाद हम सबों के हाथ काट लिए जाएँगे ?

सौम्य : ये हाथ ..... (काँप कर हाथों को देखता हुआ) ये हाथ ?

[सूखी हँसी]

राजीव : क्या कोई उपाय नहीं आचार्य ?

[पीछे वाले द्वार से धर्मपद आता हुआ दृष्टिगोचर होता है।]

धर्मपद : (आते-आते) एक उपाय है (सब लोग उसकी ओर देखने लगे हैं)

सौम्य : धर्मपद!

राजीव : तुम फिर आ गए? तुमको तो .....

विशु : (क्षब्ध स्वर में) युवक, वह तुम्हारा अपमान नहीं, मेरी प्रताड़ना थी।

धर्मपद : आचार्य, ठोकर खाकर धूल सिर पर चढ़ती है।

सौम्य : सिर पर चढ़ने के सपने छोड़ दो युवक! कोणार्क के प्रांगण में सात रोज बाद उत्कल के समस्त शिल्पियों का रक्त बहेगा।

धर्मपद : मैंने सुना है। मैं बाहर पास ही खड़ा था।

विशु : युवक, विनाश का वह संदेश अपने साथियों को भी सुना दो साहस नहीं कि उस विकराल घड़ी के लिए उन्हे तैयार कर सकूँ।

धर्मपद : निर्दय अत्याचार की छाया में ही जो विकसते और मुरझाते हैं, उनको एकाध विपत की घड़ी के लिए तैयार होने की जरूरत नहीं आर्य।

लेकिन मैं कहता हूँ इसकी नौबत ही क्यों आए?

विशु : मेरी बुद्धि काम नहीं दे रही है।

धर्मपद : मुझे अवसर दें आचार्य!

विशु : तुम्हें?

धर्मपद : महामंत्री के आने से पहले आपने मुझसे पूछा था-'क्या तुम अम्ल के ऊपर शिखर को स्थापित कर सकोगे?' मेरा उत्तर है आचार्य कि मुझे अवसर दिया जाए।

विशु : यदि अवसर दिया जाए तो तुम क्या करना चाहोगे?

धर्मपद : आचार्य, मुझे लगता है कि कोणार्क के कमल की पंखुड़ियाँ उल्टी हैं। उन्हें उलट देने पर कलश शायद ठहर सकेगा।

सौम्य : कोणार्क का कमल?

राजीव : तुम्हारा मतलब छप्र के ऊपर कमलाकार अम्ल से है?-

धर्मपद : जी! इसके हरेक पटल को फिर से इस तरह रखा जाए कि जो बाहरी हिस्सा है वह अन्दर केन्द्र पर हो और जो नुकीला भाग है, वह बाहर निकले तो उसकी आकृति खिले कमल की -सी हो जाएगी, कली की-सी नहीं। लेकिन कलश स्थिर रहेगा।

विशु : मानो अंधे को टिमटिमाता प्रकाश दिखा हो। युवक! तुम्हारी बात सारहीन नहीं जान पड़ती। अम्ल के केन्द्र पर शायद अधिक भार देने से कलश की यष्टि को सहारा मिले। (विचार मग्न मुद्रा)

धर्मपद : (खड़िया से एक पत्थर पर जल्दी-जल्दी आकृति खींचता हुआ) मेरे मन में जो चित्र है उसे यों पूरी तरह तो नहीं समझा सकता किन्तु, देखिए, अम्ल का आकार यदि कुछ इस तरह का हो तो-

[राजीव और विशु धर्मपद के निकट आकर रेखाचित्र का अवलोकन करते हैं।]

विशु : (ध्यान-मग्न मुद्रा में कुछ दूर हटते हुए) हूँ। .... इस बात में कुछ तथ्य हैं। ..... शायद..... शायद अम्ल के बाहरी भाग पर इस समय अनुपात से अधिक भार है ।.....अगर....अगर.....हम उस भार को हल्का कर सकें! तुम ठीक तो कहते हो युवक (खड़े होते हुए), तुम ठीक कहते हो।..... भार को हल्का करने के लिए अगर पटल को अर्न्तमुखी कर दिया जाए तो सम्भव है। धर्मपद, मेरे साथ अभी चलो हम छप्र के ऊपर चढ़कर अभी तैयारी करेंगे- पटल बदलने की। अभी (मध्य द्वार की ओर बढ़ते हुए)

धर्मपद : ठहरिये!

विशु : (मानो स्वप्न भ्रष्ट हुआ हो) ऐं!

धर्मपद : ठहरिए! यदि मेरी युक्ति सफल हो जाए और कोणार्क शिखर को हम स्थापित कर सके तो मुझे क्या मिलेगा?

विशु : तुम क्या चाहते हो? जो कुछ मेरे हाथ में है तुम्हे दूँगा।

धर्मपद : मैं चाहता हूँ कि यदि शिखर पूरा हो जाए तो एक दिन के लिए सिर्फ एक दिन के लिए मन्दिर प्रतिष्ठापन के दिन आप अपने सब अधिकार मुझे दे दें।

विशु : अगर कोणार्क पूरा हो जाता है तो एक दिन क्या सभी दिन के लिए वे अधिकार तुम्हारे हो जाएँगे। मैं तुम्हे अपने स्थान पर शिल्पी बना दूँगा।

राजीव : यह आप क्या कह रहे हैं, महाशिल्पी?

सौम्य : (साश्चर्य)विशु।

विशु : मैं ठीक कह रहा हूँ। इस युवक की प्रतिभा ने मुझे मुग्ध कर लिया है। राजीव, तुम नहीं जानते। मुझे प्रधान के पद से कोई मोह नहीं। मोह है तो यही कि कोणार्क पूरा हो जाए अब इस युवक ने ठण्डी होती हुई राख को फूँक मार कर प्रज्ज्वलित कर दिया है। मेरे हाथ मेरी भावनाएँ इसी क्षण कोणार्क को पूरा करने के लिए आतुर हैं। ..... चलो युवक!

[धर्मपद का हाथ पकड़कर मध्य द्वार से सवेग प्रस्थान]

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सही विकल्प चुनकर लिखिए-

धर्मपद के प्रति विशु का अतिशय स्नेह का मुख्य कारण था-

(क) धर्मपद का आशु शिल्पी होना।

(ख) धर्मपद का निश्छल और व्यवहार कुशल होना।

(ग) धर्मपद की कला में अपनी झलक देखना।

(घ) धर्मपद का निडर एवं विद्रोही स्वभाव होना।

(ड़) घोर विपत्ति और असहायता की स्थिति मे आशा की किरण बनकर धर्मपद का आना।

2. कोणार्क मंदिर कहाँ स्थित है?
3. कोणार्क मंदिर किस देवता से संबंधित है?
4. महामात्य ने कितने दिन में मंदिर पूरा करने का आदेश दिया था?
5. विशु ने मंदिर के पूरा होने पर धर्मपद को क्या देने का वचन दिया?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्मपद कौन था? वह विशु से क्यों मिलना चाहता था ?
2. मंदिर पूरा न बनने की स्थिति में विशु ने क्या निर्णय लिया और क्यों? कारण सहित लिखिए।
3. विशु धर्मपद से क्यों प्रभावित हुए? सकारण लिखिए।
4. महामात्य के चरित्र की तीन विशेषताएँ लिखिए।
5. विशु के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नाटक के तत्वों के आधार पर कोणार्क के बारे में लिखिए।
2. कला के संबंध में आचार्य विशु और धर्मपद के दृष्टिकोणों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. शिल्पियों की कौन-कौन सी समस्याएँ इस नाटक में बताई गई हैं? विस्तार से लिखिए।
4. धर्मपद के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।
5. कोणार्क के किस पात्र ने आपको अत्याधिक प्रभावित किया है? कारण सहित लिखिए।
6. धर्मपद ने कोणार्क के कलश को स्थापित करने में किस प्रकार सहायता की? समझाइए।
7. **नीचे दी गई पंक्तियों की व्याख्या कीजिए :-**

   (क) ''हमने पत्थर में ..... खड़ा कर दिया है। ''

   (ख) ''शिल्पी को.....मुझे उसकी कला चाहिए।''

   (ग) ''शिल्पी तुम.....काल की गति।''

   (घ) ''जीवन के आदि .....जीवन अधूरा है।''

   (ड़) ''मैं तो एक ऐसे..... ओझल हो गया है।''

8. **निम्नलिखित वाक्यों का भाव विस्तार कीजिए -**

   1. ''कला जीवन भी है और जीवन-यापन का साधन भी ।''

2. '' जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है– जीवन का पुरुषार्थ।''

भाषा अध्ययन–

1. निम्नलिखित शब्दों में उपसर्ग ओर प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों से उपसर्ग, प्रत्यय पृथक करके लिखिए–

   प्रतिष्ठापन, विचित्र, ओजमयी, प्रतिभावान, निर्द्वन्द्व, कायरपन, निष्क्लुष, रमणीयता, अरुणिमा, निराधार।

2. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखिए–

   पृथ्वी, नरेश, गगन, जंगल, सूर्य।

3. निम्नलिखित शब्दो के हिन्दी रूप लिखिए।

   हरेक,खबर,साफ,चीज़,निगाह,साल।

4. निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखते हुए उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए–

   मुँह छिपाना, राह पर लाना, घमण्ड चूर करना, छूमन्तर होना, पंख लगना, भण्डाफोड़ होना।

और भी जानिए–

जब सामान्य क्रिया के वाक्यों को प्रेरणात्मक क्रिया के रूप में परिवर्तित किया जाता है। तो प्रेरणार्थक क्रियाओं के प्रयोग में प्राय: अशुद्धियाँ हो जाती हैं। हिन्दी मे क्रिया का प्रथम प्रेरणात्मक रूप प्राय: 'आ' जोड़कर तथा द्वितीय प्रेरणात्मक रूप 'वा' को जोड़कर बनाया जाता है जैसे –

मूल क्रिया	**प्रेरणार्थक**	**द्वितीय प्रेरणार्थक**
पीना	पिलाना	पिलवाना
लिखना	लिखाना	लिखवाना
करना	कराना	करवाना

वाक्यगत प्रयोग

बच्चा दूध पीता है। – माँ बच्चे को दूध पिलाती है।

माँ आया से बच्चे को दूध पिलवाती है।

5. निम्नलिखित अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध कीजिए

   अ. मानो स्वप्न भ्रष्ट हुई हो।

   आ. यह कलश छप्र पर नहीं टिकती।

   इ. कोणार्क की सूर्य मन्दिर प्रसिद्ध है।

ई. क्या ये पाषान मूर्तियाँ ऊर्ध्वगामी हो जाएँगे?

6. निम्नलिखित अनुच्छेद में यथा स्थान विराम चिह्नो का प्रयोग कीजिए–

हमनें जो मूर्तियाँ इसके स्तम्भों इसकी उपपीठ और अधिस्थान में अंकित की हैं उन्हें ध्यान से देखो देखते हो उसमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाएँ मनोरंजन और मुद्राएँ चिन्हित है यही तो जीवन है

योग्यता विस्तार

1. प्रस्तुत एकांकी का विद्यालय के किसी समारोह मे अपनें सहपाठियों के साथ अभिनय कीजिए।
2. प्रस्तुत एकांकी को कहानी रूप में परिवर्तित कीजिए।
3. कोणार्क तथा अन्य ऐतिहासिक महत्व के दर्शनीय स्थलों की जानकारी एकत्रित कीजिए।
4. अपने प्रदेश के प्रमुख मंदिरों की जानकारी एकत्र कीजिए।
5. अपने निकट के किसी प्राचीन मंदिर अथवा ऐतिहासिक इमारतों का अवलोकन कर उसके कला–शिल्प को समझिए।
6. प्रस्तुत एकांकी के आधार पर कोणार्क पर एक संक्षिप्त टीप लिखिए।
7. पुस्तकालय में उपलब्ध दर्शनीय स्थलों से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन कीजिए।

शब्दार्थ

पाषाण कोर्त्तक– *पत्थर की मूर्ति बनाने वाला,* ***पार्थिव***– *भौतिक,* ***वीरशृंखला***–*जंजीर,* ***सुवर्ण शृंखला***– *सोने की कड़ियाँ,* ***कटकमुद्रा***–*नृत्य की मुद्रा* ***उत्कल*** – *आज का उड़ीसा,* ***दण्डपाशिक***–*डंडा रखने वाले सैनिक,* ***महामात्य***–*मंत्री,* ***बंगप्रदेश***–*बंगाल,* ***यवन***–*मुगल,* ***निर्निमेष***–*अपलक देखना,* ***कीर्तिस्तम्भ***–*यश का स्मारक,* ***उत्कीर्ण***–*उकेरना,* ***प्रतिष्ठापन***–*स्थापित करना ,* ***गीत गोविन्द***–*जयदेव लिखित रचना,* ***कण्ठहार***– *गले में पहनने की माला,* ***रागिनी***–*लययुक्त संगीत,* ***निर्माता*** – *बनाने वाला,* ***विषाद*** – *दुख,* ***निराश्रिता***–*बेसहारा,* ***पाषाण*** – *पत्थर,* ***उपपीठ***–*सहस्थान* ***आशु-शिल्पी***– *जन्मजात कारीगर,* ***अधिस्थान***– *मुख्य स्थान/आधार स्थान,* ***उत्कर्ष*** –*उन्नति,* ***पुरूषार्थ*** – *उद्देश्य की प्रप्ति के लिए उद्योग करना (पुरूषार्थ चार माने गए हैं धर्म अर्थ, काम और मोक्ष),* ***महादण्डपाशिक*** – *दण्ड देने वाला बड़ा अधिकारी,* ***वेत्रासन*** – *बेंत का आसन,* ***तोशक***–*रूई भरा बिछावन रजाई* ***प्राचीर***–*दीवार,* ***भंडाफोड***–*रहस्य उद्घाटित होना,* ***प्रतिहारी***–*द्वारपाल,* ***षड़यंत्र***–*कुचक्र* ***नेपथ्य*** –*मंच के पीछे जगह जहाँ नये की वेश रचना की जाती है।* ***कुठाराघात***– *भीषण आघात,* ***प्रतारणा***–*डाँट फटकार, सताना,* ***छप्र***–*छत, अम्ल–मंडप का ऊपरी खाली भाग,* ***अन्तर्मुखी***–*भीतर की ओर, अन्दर की ओर,* ***स्वप्नभ्रष्ट***–*सपना टूटा हो, नष्ट हुआ हो।*

***

भोलाराम का जीव

जीवन परिचय

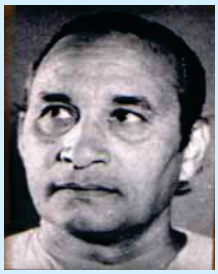

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश के इटारसी के पास जमानी नामक ग्राम में 22 अगस्त सन् 1924 ई. को हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई। उच्च शिक्षा के लिए ये इटारसी और नागपुर गए। बाल्यावस्था से ही कला एवं साहित्य के प्रति इनका गहरा लगाव था।

परसाई जी मुख्यत: व्यंग्य लेखक थे। इन्होनें व्यंग्य साहित्य को नई दिशा दी। आपके व्यंग्य समाज की कुत्सित मनोवृत्ति को उजागर कर सामाजिक नैतिकता की चीर-फाड़ करते हैं। साथ ही समकालीन राजनीति की विसंगति व विद्रूपता पर तीखी चोट करते हैं। वे सुधारने के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करने के लिए लिखते हैं।

इस महान व्यंग्यकार का निधन 10 अगस्त सन् 1995 को हुआ।

इनकी 'तबकी बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेईमानी की परत' 'पगडंडियों का जमाना', 'सदाचार का ताबीज', 'शिकायत मुझे भी है', 'और अंत में', 'रानी नागफनी

केन्द्रीय भाव :- 'भोलाराम का जीव' वर्तमान भ्रष्टाचार पर एक सटीक व्यंग्य है। प्रस्तुत व्यंग्य में पौराणिक प्रतीकों का अवलम्बन लेते हुए भोलाराम नामक एक साधारण व्यक्ति की, सेवा निवृत्ति के पश्चात् आने वाली समस्याओं का व्यंग्यात्मक चित्रण है। समय पर पेंशन न मिलने के कारण भोलाराम की जीवात्मा मरने के पश्चात् भी पेंशन प्रकरण से सम्बन्धित कागजों में अटकी है। उसकी आत्मा पेंशन प्रकरण के निराकरण हुए बिना स्वर्ग भी जाना नहीं चाहती । व्यंग्य अत्यंत मार्मिक है तथा हृदय में करुणा उत्पन्न करता है। परसाई जी ने इस व्यंग्य के माध्यम से नौकरशाही, लालफीताशाही, घूसखोरी तथा प्रशासकीय लेटलतीफी की ज्वलंत समस्याओं पर करारा प्रहार किया है। व्यंग्य में पैनेपन के साथ - साथ शिष्ट हास्य का भी समावेश है तथा वर्तमान व्यवस्था के अन्य पक्षों को छुआ है। व्यंग्य भ्रष्ट तथा असंवेदनशील व्यवस्था की ओर सहज रूप से ध्यान आकर्षित करता है। व्यंग्य का उद्देश्य मात्र त्रुटियों को उजागर करना और किसी को चोट पहुँचाना नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में परदु:खकातरता, संवेदनशीलता और कर्तव्य परायणता की भावना जगाना है।

ऐसा कभी नहीं हुआ था।

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास स्थान 'अलॉट' करते आ रहे थे, पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर पर देख रहे थे। गलती पकड़ नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खोजकर रजिस्टर इतने जोर से बन्द किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए वे बोले - ''महाराज! रिकार्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा।''

धर्मराज ने पूछा, ''और वह दूत कहाँ है?''

''महाराज! वह भी लापता है।''

उसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास वहाँ आया । उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे, ''अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन ? भोलाराम का जीव कहाँ है?''

यमदूत हाथ जोड़कर बोला, ''दयानिधान! मैं कैसे बतलाऊँ

की कहानी', 'तट की खोज' आदि व्यंग्य रचनाएँ हैं। अब आपकी समग्र रचनावली भी प्रकाशित हो चुकी है।

परसाई जी की भाषा में जिन्दादिली व फक्कड़पन है। इसमें लोक प्रचलित भाषा के नपे-तुले चुभते, हास्यपूर्ण शब्द हैं, जो पाठक के हृदय को भेदते हैं और गुदगुदाते भी हैं। इनकी रचनाओं में हास्य की मस्ती व सरलता है वहीं पैनापन भी है। इनकी भाषा लोकपरक है। शब्द का प्रयोग प्रभावी एवं सटीक है।

परसाई जी ने अपने लेखन में सामाजिक विसंगतियों पर अपनी तीखी कलम से कठोर प्रहार किए हैं। हास्य व्यंग्य के द्वारा भ्रष्टाचार, मानसिक दुर्बलता, राजनीति व अनीतियाँ हों या रिश्वतखोरी सब पर करारी चोट करने से वे चूके नहीं हैं। आपके पैने व्यंग्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

कि क्या हो गया? आज तक मैने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरंभ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्यों ही वह मेरे चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।''

धर्मराज क्रोध से बोले – ''मूर्ख! जीवों को लाते-लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।''

दूत ने सिर झुकाकर कहा–''महाराज, मेरी सावधानी में बिल्कुल कसर नही थी। मेरे इन अभ्यस्थ हाथों से अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके। पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया।''

चित्रगुप्त ने कहा –''महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। हौजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे के डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है, राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी दल ने मरने के बाद दुर्गति के लिए तो नहीं उड़ा दिया?''

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा कि ''तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई । भला भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना?''

इसी समय कहीं से घूमते – घामते नारद मुनि वहाँ आ गए। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले, ''क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं? क्या नरक में निवास स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई ?''

धर्मराज ने कहा, ''वह समस्या तो कभी की हल हो गई। नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गये हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाई। बड़े-बड़े इंजीनियर भी आ गए हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है। भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहले मृत्यु हुई। इसने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्य का भेद ही मिट जाएगा।''

नारद ने पूछा– ''उस पर इन्कम टैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।''

चित्रगुप्त ने कहा – ''इनकम होती तो टैक्स होता। भुखमरा था।''

नारद बोले – ''मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता तो बताओ। मैं पृथ्वी पर जाता हूँ ''

चित्रगुप्त ने रजिस्टर खोलकर बताया – ''भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहर में घमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक-डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के एक लड़की। उम्र लगभग साठ साल। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहले रिटायर हो गया था। मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिए मकान – मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। बहुत संभव है कि अगर मकान-मालिक वास्तविक मकान-मालिक है तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवार की तलाश में काफी घूमना पड़ेगा।''

माँ-बेटी के सम्मिलित क्रन्दन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज लगाई, ''नारायन! नारायन!''

लड़की ने देखकर कहा – आगे जाओ महाराज!''

नारद ने कहा, ''मुझे भिक्षा नहीं चाहिए, मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछताछ करनी है। अपनी माँ को जरा बाहर भेजो, बेटी''

भोलाराम की पत्नी बाहर आयी। नारद ने कहा-''माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी?''

''क्या बताऊँ? गरीबी की बीमारी थी पाँच साल हो गए, पेंशन पर बैठे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर दस पन्द्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहाँ से यही जवाब मिलता ''विचार हो रहा है।'' इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिन्ता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया। ''

नारद ने कहा – ''क्या करोगी माँ ? उनकी इतनी ही उम्र थी।''

''ऐसा तो मत कहो, महाराज? उम्र तो बहुत थी। पचास – साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं से करके गुजारा हो जाता। पर क्या करें? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गए और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।''

दु:ख की कथा सुनने की फुरसत नारद को थी नहीं। वे अपने मुद्दे पर आए, ''माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी का उनसे विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो?''

पत्नी बोली – ''लगाव तो महाराज, बाल-बच्चों से होता है।''

''नहीं परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है, किसी स्त्री ''

स्त्री ने गुर्राकर नारद की ओर देखा। बोली- ''हर कुछ मत बको महाराज, तुम साधु हो। जिन्दगी- भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आँख उठाकर नहीं देखा।''

नारद हँसकर बोले- ''हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा , माता मैं चला।''

स्त्री ने कहा- ''महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाए। इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए।''

नारद को दया आ गई थी। वे कहने लगे – ''साधुओं की बात कौन मानता है? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं । फिर भी मैं सरकारी दफ्तर में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।''

वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ्तर पहुँचे। वहाँ पहले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केस के बारे में बातें कीं। उस बाबू ने उन्हे ध्यानपूर्वक देखा और बोला– ''भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजीं थीं, पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी।''

नारद ने कहा– ''भई! ये बहुत से 'पेपर –वेट' तो रखे हैं । इन्हें क्यों नहीं रख दिया।''

बाबू हँसा– ''आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती । दरख्वास्तें 'पेपर–वेट' से नहीं दबती। खैर आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए।''

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे बाबू के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पाँचवे के पास। जब नारद पच्चीस–तीस बाबुओं और अफसरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा– ''महाराज ! आप क्यों इस झंझट में पड़ गए। आप अगर साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो आपका अभी काम हो जाएगा।''

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहा था, इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। बिना 'विज़िटिंग कार्ड' के आया देख, साहब बड़े नाराज हुए। बोले–इसे कोई मन्दिर–वन्दिर समझ लिया है क्या? धड़धड़ाते चले आए। चिट क्यों नहीं भेजी?''

नारद ने कहा – ''कैसे भेजता? चपरासी सो रहा है।''

''क्या काम है?'' साहब ने रौब से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन – केस बतलाया।

साहब बोले, ''आप हैं बैरागी ! दफ्तरों के रीति रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की । भई, यह भी एक मन्दिर है। यहाँ भी दान पुण्य करना पड़ता है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं, उन पर वजन रखिए।''

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वजन की समस्या खड़ी हो गई । साहब बोले – ''भई, सरकारी पैसे का मामला है पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतनी ही स्टेशनरी लग जाती है, हाँ जल्दी भी हो सकता है, मगर .....'' साहब रुके।

नारद ने कहा– ''मगर क्या?''

साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा – ''मगर वजन चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वजन भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना बजाना सीखती है। यह मैं उसे दूँगा। साधु–संतों की वीणा से तो और अच्छे स्वर निकलते हैं।''

नारद अपनी वीणा छिनते देख जरा घबराए। पर फिर संभलकर उन्होंने वीणा टेबल पर रखकर कहा– ''यह लीजिए। अब जरा जल्दी उसकी पेंशन का आर्डर निकाल दीजिए।''

साहब ने प्रसन्नता से उन्हे कुर्सी दी, वीणा को एक कोने में रखा और घण्टी बजाई । चपरासी हाजिर हुआ।

साहब ने हुक्म दिया – ''बडे बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ।''

थोडी ही देर बाद चपरासी भोलाराम की सौ–डेढ़ सौ दरख्वास्तों से भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशन के कागजात भी थे साहब ने फाइल पर नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा–''क्या नाम बताया साधु जी आपने ? ''

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनते हैं इसलिए जोर से बोले –''भोलाराम !''

सहसा फाइल में से आवाज आई, ''कौन पुकार रहा है मुझे ? पोस्टमैन है? क्या पेंशन का आर्डर आ गया?''

नारद ने कहा–''मैं नारद हूँ मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो, स्वर्ग में तुम्हारा इन्तजार हो रहा है।''

आवाज आई –''मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता''।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. यमदूत को किसने चकमा दिया था?
2. भोलाराम का जीव ढूँढने के लिए धरती पर कौन गया?
3. भोलाराम की स्त्री ने नारद जी से क्या प्रार्थना की?
4. भोलाराम के मरने का क्या कारण था?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भोलाराम की जीवात्मा कहाँ अटकी थी, वह स्वर्ग क्यों नहीं जाना चाहता था?
2. साहब ने नारद जी की वीणा क्यों माँगी?
3. ''भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं उन पर 'वजन' रखिए'' वाक्य में वजन शब्द किसकी ओर संकेत कर रहा है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भोलाराम के रिटायर होने के बाद उसे और उसके परिवार को किन परेशानियों का सामना करना पड़ा?
2. धर्मराज के अनुसार नरक की आवास समस्या किस प्रकार हल हुई?
3. अगर मकान मालिक वास्तव में मकान मालिक है तो उसने भोलाराम के मरते ही उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इस वाक्य में निहित व्यंग्यार्थ को स्पष्ट कीजिए।
4. साहब ने भोलाराम की पेंशन में देर होने की क्या वजह बताई?
5. लेखक ने इस व्यंग्य के माध्यम से किन अव्यवस्थाओं पर चोट की है?
6. इन गद्यांशों की संदर्भ एवं प्रसंगों सहित व्याख्या कीजिए –
   (1) आप हैं बैरागी..... करना पड़ता है
   (2) धर्मराज क्रोध .....इन्द्रजाल हो गया।
7. इन पंक्तियों का भाव पल्लवन कीजिए–
   (1) साधुओं की बात कौन मानता है?
   (2) गरीबी भी एक बीमारी है।
   (3) साधु-संतों की वीणा से तो ओर भी अच्छे स्वर निकलते हैं ।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों के लिए मानक शब्द लिखिए –

   ओवरसियर, गुमसुम, इन्कम टैक्स, दफ्तर, हाजिरी आखिर, इमारत, बकाया, काफी, रिटायर।

2. निम्नलिखित मुहावरों को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए–

   चकमा देना, चंगुल से छूटना, उड़ा देना, पैसा हड़पना, वजन रखना ।

3. इस पाठ में से योजक चिह्न वाले विशेषण और क्रिया के द्विरूक्ति शब्द छाँटकर लिखिए।

4. निम्नलिखित वाक्यों के शुद्ध रूप लिखिए –

   (क) धोखा नहीं खाई थी आज तक मैने।

   (ख) रास्ता मैं कट जाता है डिब्बे के डिब्बे मालगाड़ी के।

   (ग) आ गई उम्र तुम्हारी रिटायर होने की।

   (घ) फाइल लाओ केस की भोलाराम बड़े बाबू से।

और भी जानिए :-

आप अभी तक कुछ विराम चिह्नों के विषय में जान चुके हैं। अब यहाँ कुछ और भी विराम चिह्नों के विषय में जानिए–

पूर्ण विराम – (।)

पूर्ण विराम का प्रयोग किसी कथन के पूर्ण होने पर किया जाता है। जैसे –

(अ) कथन की पूर्णता – राम पुस्तक पढ़ता है।

(ब) अप्रत्यक्ष प्रश्न – मैं क्या बताऊँ कि तुम क्या चाहते हो।

(स) कविता के चरण के अंत में –

सुनी जननि सोई सुत बड़भागी।
जो पितुमातु वचन अनुरागी ॥

निर्देशक चिह्न (–)

इस चिह्न का प्रयोग आगे आने वाले विवरण को संकेतिक करने के लिए तथा संवादों में भी करते हैं।

जैसे– संज्ञा के तीन भेद हैं – व्यक्तिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा और जातिवाचक संज्ञा।

सीता– कहिए आपके क्या हाल हैं ?

राम– ठीक हूँ।

अवतरण चिह्न (‘‘ ’’/ ‘,)

इसे उद्धरण चिह्न भी कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है

(1) (किसी के द्वारा कहे गए कथन या महापुरुष की वाणी को उद्धृत करते समय दोहरे (‘‘ ’’) अवतरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है)जैसे– ‘‘मैं नारद हूँ तुम्हें लेने आया हूँ।’’

(2) किसी व्यक्ति का नाम , पुस्तक का नाम इकहरे अवतरण चिह्न (' ,) में लिखा जाता है। जैसे – छायावाद के प्रमुख चार कवि हैं– 'प्रसाद', 'निराला','पंत' और महादेवी वर्मा ।

5 निम्नलिखित अनुच्छेद में पूर्ण विराम, निर्देशक चिह्न तथा अवतरण चिह्न आदि का यथा स्थान प्रयोग कीजिए।

बाबू हँसा आप साधु हैं आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती दरख्वास्तें पेपर से नहीं दबती खैर आप इस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए।

योग्यता विस्तार

1. हरिशंकर परसाई की अन्य रचनाएँ खोजकर पढ़िए ।
2. यह व्यंग्य आपको कैसा लगा? कक्षा में चर्चा कीजिए ।
3. यदि भोलाराम के स्थान पर आप होते, तो आप अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करते?
4. वर्तमान प्रशासकीय व्यवस्था पर अपना मत व्यक्त कीजिए।
5. प्रस्तुत व्यंग्य को एकांकी में परिवर्तित कर किसी अवसर पर अभिनय कीजिए।

***

मेरे बचपन के दिन

जीवन परिचय

श्रीमती महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च सन् 1907 को फर्रूखाबाद (उ.प्र.)के संभ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई। प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. करने के पश्चात् प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्य रहीं।

महादेवी वर्मा जी को अपनी रचना 'नीरजा' पर पुरस्कार मिला। आपने 'चाँद' मासिक पत्र का सम्पादन भी किया। आपकी विविध साहित्यिक, शैक्षिक तथा सामाजिक सेवाओं के लिए भारत सरकार ने पद्मभूषण से अलंकृत किया । वे एक कुशल चित्रकार भी थीं। महादेवी जी की रचित मुख्य रचनाएँ नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा, अतीत के चल चित्र, पथ के साथी आदि पाठकों को अपनी ओर खींच लेती हैं। महादेवी जी का निधन 11 सितम्बर सन् 1987 को हुआ।

महादेवी जी की भाषा अत्यंत प्रांजल, प्रौढ़ और स्पष्ट है। शब्द चयन अद्भुत है। शब्द छोटे, भावव्यंजक तथा अर्थ गौरवपूर्ण रहते हैं।

केन्द्रीय भाव :- संस्मरण किसी व्यक्ति के स्मृति चित्र होते हैं। महादेवी वर्मा एक श्रेष्ठ कवयित्री होने के साथ-साथ संस्मरण और रेखाचित्रों की सिद्ध लेखिका भी हैं ।'मेरे बचपन के दिन' संस्मरण में उन्होंने अपने बचपन के दिनों का पारिवारिक वातावरण, शिक्षा तथा सामाजिक सम्बंधों का भावपूर्ण चित्रण किया है। प्रस्तुत संस्मरण में तत्कालीन परिस्थितियों, भाषा बोली तथा धर्मों के समरसता युक्त स्वरूप की झलक है। संस्मरण में स्वतंत्रता आन्दोलन के उल्लेख के साथ -साथ बापू द्वारा दिए पुरस्कार में मिले चाँदी के कटोरे को माँग लेने का प्रसंग अत्यंत भावुक है । यह प्रसंग बाल - मनोविज्ञान की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है।

संस्मरण में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ बीते पल जहाँ उस समय के साहित्यिक परिवेश को व्यक्त करते हैं वहीं जेबुन्निसा और जवारा नवाब के परिवार के साथ उनके सम्बन्धों में सर्वधर्म समभाव की भावना परिलक्षित होती है।

मेरे बचपन के दिन में महादेवी वर्मा ने अपने बचपन के उन दिनों को स्मृति के सहारे लिखा है जब वे विद्यालय में पढ़ रही थीं। इस अंश में लड़कियों के प्रति सामाजिक रवैये, विद्यालय की सहपाठिनों, छात्रावास के जीवन और स्वतंत्रता आंदोलन के प्रसंगों का बहुत ही सजीव वर्णन है।

बचपन की स्मृतियों में एक विचित्र - सा आकर्षण होता है। कभी-कभी लगता है, जैसे सपने में सब देखा होगा। परिस्थितियाँ बहुत बदल जाती हैं।

अपने परिवार में मैं कई पीढ़ियों के बाद उत्पन्न हुई। मेरे परिवार में प्राय: दो सौ वर्ष तक कोई लड़की थी ही नहीं। फिर मेरे बाबा ने बहुत दुर्गा पूजा की । हमारी कुल-देवी दुर्गा थीं। मैं उत्पन्न हुई तो मेरी बड़ी खातिर हुई। परिवार में बाबा फ़ारसी और उर्दू जानते थे। पिता ने अंग्रेजी पढ़ी थी। हिन्दी का कोई वातावरण नहीं था।

महादेवी वर्मा की लेखन शैली के तीन रूप दिखाई देते हैं, ये विवेचनात्मक, विचारात्मक, और कलात्मक हैं। उनकी शैली गंभीर चिंतनप्रधान और विश्लेषणात्मक है। छायावाद तथा रहस्य वाद धारा में प्रसाद पंत और निराला के साथ, महादेवी वर्मा एक प्रमुख कवयित्री मानी जाती हैं। गद्य एवं पद्य की धाराओं को अत्यधिक सचेतना के साथ प्रवाहशील बनाने वाले साहित्य सृष्टाओं में महादेवी जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

मेरी माता जबलपुर से आईं तब वे अपने साथ हिंदी लाईं। वे पूजा पाठ भी बहुत करती थीं। पहले-पहले उन्होंने मुझको 'पंचतंत्र' पढ़ना सिखाया।

बाबा कहते थे, इसको हम विदुषी बनाएँगे। मेरे संबंध में उनका विचार बहुत ऊँचा रहा । इसलिए पंचतंत्र' भी पढ़ा मैंने, संस्कृत भी पढ़ी। ये अवश्य चाहते थे कि मैं उर्दू - फ़ारसी सीख लूँ, लेकिन वह मेरे वश की नहीं थी। मैंने जब एक दिन मौलवी साहब को देखा तो बस, दूसरे दिन मैं चारपाई के नीचे जा छिपी। तब पंडित जी आए संस्कृत पढ़ाने। माँ थोड़ी संस्कृत जानती थीं गीता में उन्हे विशेष रुचि थी। पूजा-पाठ के समय मैं भी बैठ जाती थी और संस्कृत सुनती थी। उसके उपरांत उन्होंने मिशन स्कूल में रख दिया मुझको। मिशन स्कूल में वातावरण दूसरा था, प्रार्थना दूसरी थी। मेरा मन नहीं लगा। वहाँ जाना बंद कर दिया । जाने में रोने-धोने लगी। तब उन्होंने मुझको क्रास्थवेस्ट गर्ल्स कालेज में भेजा, जहाँ मैं पाँचवे दर्जे में भर्ती हुई । यहाँ का वातावरण बहुत अच्छा था उस समय। हिंदू लड़कियाँ भी थीं, ईसाई लड़कियाँ भी थीं। हम लोगों का एक ही मेस था। उस मेस में प्याज़ तक नहीं बनता था।

वहाँ छात्रावास के हर एक कमरे में हम चार छात्राएँ रहती थीं । उनमें पहले ही साथिन सुभद्रा कुमारी मिलीं। सातवे दर्जे में वे मुझसे दो साल सीनियर थीं। वे कविता लिखती थीं और मैं भी बचपन से तुक मिलाती आई थीं। बचपन में माँ लिखती भी थीं, और गाती भी थीं। मीरा के पद विशेष रूप से गाती थीं सवेरे 'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले'। यही सुना जाता था प्रभाती गातीं थीं। शाम को मीरा का कोई पद गातीं थीं । सुन सुनकर मैंने ब्रजभाषा में लिखना आंरभ किया । यहाँ आकर देखा कि सुभद्रा कुमारी जी खड़ी बोली में लिखती थीं। मैं भी वैसा ही लिखने लगी। लेकिन सुभद्रा जी बड़ी थीं, प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उनसे छिपा-छिपाकर लिखती थीं मैं। एक दिन उन्होंने कहा 'महादेवी, तुम कविता लिखती हो ?' तो मैने डर के मारे कहा, 'नहीं।' अंत में उन्होन मेरी डेस्क की किताबों की तलाशी लीं और बहुत सा निकल पड़ा उसमें से । तब जैसे किसी अपराधी को पकड़ते हैं, ऐसे उन्होंने एक हाथ में कागज लिए और एक हाथ से मुझको पकड़ा और पूरे होस्टल में दिखा आईं कि ये कविता लिखती है। फिर हम दोनों की मित्रता हो गई । क्रास्थवेस्ट में एक पेड़ की डाल नीची थी। उस डाल पर हम लोग बैठ जाते थे। जब और लड़कियाँ खेलती थीं तब हम लोग तुक मिलाते थे। उस समय एक पत्रिका निकलती थी-'स्त्री दर्पण'-उसी में भेज देते थे। अपनी तुकबंदी छप भी जाती थी। फिर यहाँ कवि सम्मेलन होने लगे तो हम लोग उनमें जाने लगे। हिन्दी का उस समय प्रचार प्रसार था। मैं सन् 1917 में यहाँ आई थी। उसके उपरांत गांधी जी का सत्याग्रह आरंभ हो गया।और आनंद भवन स्वतंत्रता के संघर्ष का केन्द्र हो गया। जहाँ - तहाँ हिन्दी का भी प्रचार चलता था। कवि सम्मेलन होते थे तो क्रास्थवेस्ट से मैडम हमको साथ लेकर जाती थीं। हम कविता सुनाते थे। हरिऔध जी अध्यक्ष होते थे, श्रीधर पाठक होते थे, कभी रम्नाकर जी होते थे, कभी कोई होता था। कब हमारा नाम पुकारा जाए, बेचैनी से सुनते रहते थे। मुझको प्राय: प्रथम पुरस्कार मिलता था। सौ से कम पदक नहीं मिले होंगे उसमें।

एक बार घटना की की याद आती है कि एक कविता पर मुझे चाँदी का एक कटोरा मिला। बड़ा नक्काशीदार, सुंदर । उस दिन सुभद्रा नहीं गईं थीं। सुभद्रा प्राय: नहीं जाती थीं कवि सम्मेलन में। मैंने उनसे आकर कहा, 'देखो, यह मिला।'

सुभद्रा ने कहा, 'ठीक है, अब तुम एक दिन खीर बनाओ और मुझको इस कटोरे में खिलाओ।'

उसी बीच आनंद भवन में बापू आए। हम लोग तब अपने जेब-खर्च में से हमेशा एक-एक, दो-दो आने देश के लिए बचाते थे और जब बापू आते थे तो वह पैसा उन्हें दे देते थे। उस दिन जब मैं बापू के पास गई तो अपना कटोरा भी लेती गई। मैंनें निकालकर बापू को दिखाया। मैंने कहा, 'कविता सुनाने पर मुझको यह कटोरा मिला है।' कहने लगे, 'अच्छा, दिखा तो मुझको। ' मैंने कटोरा उनकी ओर बढ़ा दिया तो उसे हाथ में लेकर बोले , 'तू देती है इसे? ' अब मैं क्या कहती? मैंने दे दिया और लौट आई। दुख यह हुआ कि कटोरा लेकर कहते, कविता क्या है? पर कविता सुनाने को उन्होंने नहीं कहा। लौटकर अब मैंने सुभद्रा जी से कहा कटोरा तो चला गया। सुभद्रा जी ने कहा, 'और जाओ दिखाने!' फिर बोलीं, देखो भाई, खीर तो तुमको बनानी होगी। अब तुम चाहे पीतल की कटोरी में खिलाओ, चाहे फूल के कटोरे में - फिर भी मुझे मन ही मन प्रसन्नता हो रही थी कि पुरस्कार में मिला अपना कटोरा मैंने बापू को दे दिया।

सुभद्रा जी छात्रावास छोड़कर चली गईं । तब उनकी जगह एक मराठी लड़की जेबुन्निसा हमारे कमरे में आकर रही। वह कोल्हापुर से आई थी। जेबुन मेरा बहुत-सा काम कर देती थी। वह मेरी डेस्क साफ कर देती थी, किताबें ठीक से रख देती थी । और इस तरह मुझे कविता के लिए कुछ और अवकाश मिल जाता था। जेबुन मराठी शब्दों में मिली जुली हिन्दी बोलती थी। मैं भी उससे कुछ-कुछ मराठी सीखने लगी थी। वहाँ एक उस्तानी जी थीं - ज़ीनत बेगम। ज़ेबुन जब 'इकड़े-तिकड़े' या 'लोकर-लोकर' जैसे मराठी शब्दों को मिलाकर कुछ कहती तो उस्तानी जी से टोके बिना रहा नहीं जाता था-'वाह! देसी कौवा, मराठी बोली! ' जेबुन कहती थी, 'नहीं उस्तानी जी, यह मराठी कौवा मराठी बोलता है।' जेबुन मराठी महिलाओं की तरह किनारीदार साड़ी और वैसा ही ब्लाऊज पहनती थी। कहती थी, 'हम मराठी हैं तो मराठी बोलेंगे !'

उस समय यह देखा मैने कि साम्प्रदायिकता नहीं थी। जो अवध की लड़कियाँ थी, वे आपस में अवधी बोलती थीं; बुंदेलखंड की आती थीं वे बुंदेली में बोलती थीं। कोई अंतर नहीं आता था और हम पढ़ते हिंदी थे। उर्दू भी हमको पढ़ाई जाती थी, परंतु आपस में हम अपनी भाषा में ही बोलती थीं। यह बहुत बड़ी बात थी। हम एक मेस में खाते थे, एक प्रार्थना में खड़े होते थे; कोई विवाद नहीं होता था।

मैं जब विद्यापीठ आई तब तक मेरे बचपन का वही क्रम चला जो आज तक चलता आ रहा है। कभी - कभी बचपन के संस्कार ऐसे होते हैं कि हम बड़े हो जाते हैं, तब तक चलते हैं। बचपन का एक और संस्कार भी था हम जहाँ रहते थे वहाँ जवारा के नवाब रहते थे। उनकी नबाबी छिन गई थी। बेगम साहिबा कहती थीं। 'हमको ताई कहो!' हम लोग उनको 'ताई साहिबा ' कहते थे। उन के बच्चे हमारी माँ को चाची जान कहते थे। हमारे जन्मदिन वहाँ मनाए जाते थे। उनके जन्मदिन हमारे यहाँ मनाए जाते थे। उनका एक लड़का था उसको राखी बाँधने के लिए वे कहती थीं। बहनों को राखी बाँधनी चाहिए। राखी के दिन सवेरे से उसको पानी भी नहीं देती थीं, राखी के दिन बहनें राखी बाँध जाएँ तब तक भाई को निराहार रहना चाहिए। बार-बार कहलाती थीं कि 'भाई भूखा बैठा है, राखी बँधवाने के लिए।' फिर हम लोग जाते थे। हमको लहरिए या कुछ मिलते थे। इसी तरह मुहर्रम में हरे कपड़े उनके बनते थे तो हमारे भी बनते थे। फिर एक हमारा छोटा भाई हुआ वहाँ, तो ताई साहिबा ने पिताजी से कहा, ' देवर साहब से कहो, वो मेरा नेग ठीक करके रखें। मैं शाम को आऊँगी।' वे कपड़े-वपड़े लेकर आईं। हमारी माँ को दुल्हन कहती थीं। कहने लगीं दुल्हन, जिनके ताई-चाची नहीं होतीं वो अपनी माँ के कपड़े पहनते हैं, नहीं तो छः महीने तक चाची - ताई पहनाती हैं। मैं इस बच्चे के लिए कपड़े लाई हूँ। यह बड़ा सुन्दर है। मैं अपनी तरफ से इसका नाम 'मनमोहन' रखती हूँ।

वही प्रोफेसर मनमोहन वर्मा आगे चलकर जम्मू यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर रहे, गोरखपुर यूनिवर्सिटी के भी रहे। कहने का तात्पर्य यह कि मेरे छोटे भाई का नाम वही चला जो ताई साहिबा ने दिया । उनके यहाँ भी हिन्दी चलाई जाती थी, उर्दू भी चलती थी। यों, अपने घर में वे अवधी बोलती थीं। वातावरण ऐसा था उस समय कि हम लोग बहुत निकट थे। आज की स्थिति देखकर लगता है, जैसे वह सपना ही था। आज वह सपना खो गया।

शायद वह सपना सत्य हो जाता तो भारत की कथा कुछ और होती।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. महादेवी वर्मा ने अपने बचपन में सबसे पहली कौन सी पुस्तक पढ़ी?
2. छात्रावास में महादेवी वर्मा की पहली साथिन कौन थी?
3. लेखिका के भाई का नामकरण किसने किया था?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पुरस्कार में मिले चाँदी के कटोरे को देकर लेखिका को दु:ख के साथ-साथ प्रसन्नता क्यों हुई?
2. लेखिका और सहेलियाँ अपने जेब खर्च से पैसे क्यों बचाती थी?
3. लेखिका की ताई साहिबा उनके भाई के जन्म पर कपड़े लेकर क्यों आईं थीं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लेखिका ने अपनी माँ की किन विशेषताओं का उल्लेख किया है?
2. लेखिका के बचपन के दिनों के सामाजिक तथा भाषायी वातावरण का चित्रण कीजिए।
3. परिवारों में लड़कियों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए?
4. निम्नलिखित गद्यांशों की संदर्भ, प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए –

   (क) हम हिन्दी ..... नहीं होता था।

   (ख) उनके यहाँ भी ..... सपना खो गया।

5. **निम्नलिखित पंक्तियों का भाव पल्लवन कीजिए –**

   (क) बचपन की स्मृतियों में एक विचित्र-सा आकर्षण होता है।

   (ख) परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती हैं।

6. **''शायद वह सपना सत्य हो जाता तो भारत की कथा कुछ और होती'' कथन के आधार पर भारत की वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।**

भाषा अध्ययन-

1. **निम्नलिखित शब्दों के विलोम शब्द लिखिए -**

   अनंत, निरपराधी, दण्ड, शांति

2. **निम्नलिखित शब्दों के सामने दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए-**

(अ) निराहारी	-	(निर्+आहार+ई)	(निरा+हारी)	(निराह+आरी)
(आ) अप्रसन्नता	-	(अप्र+सन्नता)	(अ+प्रसन्नता)	(अ+प्रसन्न+ता)
(इ) अपनापन	-	(अप+नापन)	(अपन+आपन)	(अपना+पन)
(ई) किनारीदार	-	(कि+नारी+दार	(किनारी+दार)	(किना+रीदार)

3. **निम्नलिखित शब्दों में से तत्सम, तद्भव तथा विदेशी शब्द पहचान कर लिखिए-**

   दर्जे , मेज, जेब, छात्रावास, मित्र, होस्टल, प्रथम, कटोरा, भवन, खर्च, खीर, द्वंद, कपड़े, सपना

और भी जानें:-

पिछले पाठ में द्विरुक्ति के विषय में आप जान चुके हैं। द्विरुक्ति का आशय दोहराना है। इसमें एक शब्द की आवृति होती है। पुनरूक्त शब्द में द्विरुक्ति की स्थिति भी बन जाती है।

ध्यान दीजिए -

द्विरुक्ति और पुनरुक्त शब्दों में अन्तर भी है द्विरुक्ति में एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति होती है किन्तु पुनरूक्त शब्दों में एक ही शब्द के अतिरिक्त अपूर्ण, प्रति ध्वन्यात्मक और विलोम शब्द भी आ सकते है। इसलिए पुनरुक्त शब्दों का चार श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. **पूर्ण पुनरुक्त शब्द-** इसमें पहली इकाई ही दूसरी इकाई के रूप में ज्यो की त्यों आती है। जैसे - धीरे-धीरे,

2. **अपूर्ण पुनरुक्त शब्द-** जहाँ शब्द युग्म में दूसरी इकाई पहली इकाई से बना कोई रूप धारण कर आती है, वहाँ अपूर्ण पुनरुक्त शब्द होते है। जैसे- सीधा-सादा, भोला- भाला।

3. **प्रति ध्वन्यात्मक शब्द-** इसमें दूसरा शब्द पहले की प्रतिध्वनि होता है। जैसे चाय-वाय, झट-पट, छम-छम, खट-पट।

4. **भिन्नात्मक शब्द-** इस प्रकार के शब्द युग्म में प्रत्येक शब्द भिन्न अर्थ रखने वाला होता है। जैसे- पढ़ाई-लिखाई, एक-दो, हानि-लाभ।

विशेष-शब्द युग्म में दो शब्दों के बीच योजक चिह्न (-) का प्रयोग होता है। जैसे- कभी-कभी, एक-दो आदि।

4. निम्नलिखित शब्द युग्मों में से पूर्ण पुनरूक्त,अपूर्ण पुनरूक्त ,प्रति ध्वन्यात्मक शब्द और भिन्नार्थक शब्द छाँटकर लिखिए-

   पहले-पहल, रोने-धोने, सुन-सुन, प्रचार-प्रसार, जहाँ-तहाँ, कुछ-कुछ, कपड़े-वपड़े, इकड़े-तिकड़े, बार-बार, मिली-जुली, ताई-चाची।

5. निम्नलिखित शब्दों के बीच योजक चिह्न (-) का प्रयोग किस स्थिति को स्पष्ट करता है ?

   कुल-देवी, दुर्गा-पूजा, जेब-खर्च, कवि-सम्मेलन,

योग्यता विस्तार

1. महादेवी वर्मा जी के इस संस्मरण को पढ़कर आपके मन में जो अपने बचपन की स्मृति आई उसे संस्मरण शैली में लिखिए।
2. चांदी का कटोरा के स्थान पर यदि कोई कीमती वस्तु आपको पुरस्कार स्वरूप मिलती तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होती?
3. महादेवी वर्मा के अन्य संस्मरण अपने पुस्तकालय से प्राप्त करके पढ़िए।
4. यदि महादेवी वर्मा का सपना सच हो जाता तो आज का भारत कैसा होता? अपने शब्दों में लिखिए।

शब्दार्थ

इकड़े-तिकड़े-इधर उधर, **लोकर-लोकर** - मराठी मूल शब्द अर्थात् जल्दी-जल्दी, **नेग**- मांगलिक अवसरों पर सगे संबंधियों को उपहार देने की रस्म।

***

जीने की कला

केन्द्रीय भाव - गीता जीवन जीने की कला सिखाती है। साथ ही नर से नरश्रेष्ठ बनने का मार्गदर्शन भी गीता में है। अनेक महापुरुषों ने इसे कर्तव्यज्ञान का अद्वितीय कोष कहा है। महात्मा गांधी गीता को गीता मैया कहा करते थे। गीता में भारतीय तत्त्वज्ञान सारसर्वस्व के व्यावहारिक स्वरूप की प्रस्तुति है।

प्रस्तुत पाठ ''जीने की कला'' महात्मा गांधी की पुस्तक ''गीता माता'' से संग्रहीत एवं सम्पादित है, इसके लेखक मोहनदास करमचंद गांधी है। इसमें मानव बुद्धि को व्यावहारिक बनाने के सूत्र हैं।

लेखक परिचय

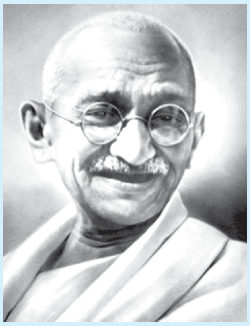

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबंदर नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम करमचंद तथा माता का नाम पुतलीबाई था। गांधी जी का पूरा नाम मोहनदास करमचंद गांधी था। इन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा राजकोट में पूरी की। उच्च शिक्षा के लिए आप इंग्लैण्ड गए तथा वहाँ से बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की। वे दक्षिण अफ्रीका गए और वहाँ भारतीयों तथा अपने साथ गोरों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार का अहिंसात्मक ढंग से विरोध किया। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर श्री गोपालकृष्ण गोखले के मार्गदर्शन में उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन प्रारंभ किया। आपने सत्याग्रह और असहयोग को अंग्रेजों के विरुद्ध अपने आंदोलन का आधार बनाया। अहिंसा आपका प्रमुख शस्त्र था। आपने भारतीयों को स्वदेशी तथा आत्मनिर्भरता का पाठ भी पढ़ाया। गांधीजी ने निम्न वर्ग के विकास के लिए प्राण-पण से कार्य किया। वे साम्प्रदायिक सद्भाव के पक्षधर थे। 'सत्य के प्रयोग' आत्मकथा उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक है। इन्होंने 'हरिजन' तथा 'यंग इंडिया' नामक पत्र भी निकाले। आपकी 'हिन्द स्वराज्य' 'सर्वोदय' (रस्किन की 'अन टु दि लास्ट' पुस्तक का अनुवाद), दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर अत्याचारों का वर्णन करने वाली पुस्तक 'हरी पुस्तिका' महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

महाभारत ग्रंथ में गीता सर्वोच्च स्थान पर विराजती है। उसका दूसरा अध्याय भौतिक युद्ध का व्यवहार सिखाने के बदले स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञ का सांसारिक के साथ कोई संबंध नहीं हो सकता, यह बात मुझे तो उसके लक्षणों में ही निहित दिखाई दी है। परिवार के मामूली झगड़े के औचित्य या अनौचित्य का निर्णय करने के लिए गीता जैसी पुस्तक नहीं रची जा सकती।

अवतार का अर्थ है शरीरधारी विशिष्ट पुरुष। जीवमात्र ईश्वर के अवतार हैं, परन्तु लौकिक भाषा में सबको अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान पुरुष होता है, उसे भविष्य की प्रजा अवतार के रूप में पूजती है। इसमें मुझे कोई दोष नहीं मालूम होता।

अवतार में यह विश्वास मनुष्य की अंतिम उदात्त आध्यात्मिक अभिलाषा का सूचक है। ईश्वर-रूप हुए बिना मनुष्य को सुख नहीं मिलता, शांति का अनुभव नहीं होता। ईश्वर-रूप बनने के लिए किए जाने वाले प्रयत्न का ही नाम सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है और वही आत्म-दर्शन है। यह आत्म-दर्शन जिस प्रकार समस्त धर्मग्रन्थों का विषय है, उसी प्रकार गीता का भी है। लेकिन गीताकार ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए गीता की रचना नहीं की है। गीता का उद्देश्य आत्मार्थी को आत्म-दर्शन करने का एक अद्वितीय उपाय बताना है।

वह अद्वितीय उपाय है कर्म के फल का त्याग।

इसी केन्द्र बिन्दु के आसपास गीता का सारा विषय गूँथा गया है।

जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही। कर्म से कोई मनुष्य मुक्त नहीं है।

परन्तु प्रत्येक कर्म में कुछ न कुछ दोष तो होता ही है। और मुक्ति केवल निर्दोष मनुष्य को ही मिलती है। तब कर्म के बंधन से अर्थात् दोष के स्पर्श से कैसे छूटा जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर गीता जी ने निश्चयात्मक शब्दों में दिया है। 'निष्काम कर्म करके, यज्ञार्थ कर्म करके, कर्म के फल का त्याग करके, सारे कर्म कृष्णार्पण करके- अर्थात् मन, वचन और काया को ईश्वर में होम कर।'

परन्तु निष्कामता, कर्म के फल का त्याग, केवल कह देने से ही सिद्ध नहीं हो जाता। वह केवल बुद्धि नहीं हो जाता। वह केवल बुद्धि का प्रयोग नही है। वह हृदय-मन्थन से ही उत्पन्न होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना, भक्त होना ही आत्म-दर्शन है। आत्म-दर्शन इससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है।

ऐसे ज्ञानियों और ऐसे भक्तों को गीता ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है : ''कर्म के बिना किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।''

फलत्याग का अर्थ कर्म के परिणाम के विषय में लापरवाह रहना नहीं है। परिणाम का और साधना का विचार करना तथा दोनों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इतना करने के बाद जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किए बिना साधन में तन्मय रहता है, वह फलत्यागी कहा जाता है।

फलासक्ति के ऐसे कड़वे परिणामों से गीताकार ने अनासक्ति का अर्थात् कर्मफल के त्याग का सिद्धांत निकाला है और उसे दुनिया के सामने अत्यंत आकर्षक भाषा में रखा है।

सामान्यतः यह माना जाता है कि धर्म और अर्थ परस्पर विरोधी है ''व्यापार आदि सांसारिक व्यवहारों में धर्म का पालन नहीं हो सकता, धर्म के लिए स्थान नहीं हो सकता।

धर्म का उपयोग केवल मोक्ष के लिए ही किया जा सकता है। धर्म के स्थान पर धर्म शोभा देता है, अर्थ के स्थान पर अर्थ शोभा देता है।'' मैं मानता हूँ कि गीताकार ने इस भ्रम को दूर कर दिया है। उन्होंने मोक्ष और सांसारिक व्यवहार के बीच ऐसा कोई भेद नहीं रखा है, परन्तु धर्म को व्यवहार में उतारा है। जो धर्म व्यवहार में नहीं उतारा जा सकता वह धर्म ही नहीं है- यह बात गीता में कहीं गई है, ऐसा मुझे लगा है। अतः गीता के मत के अनुसार जो कर्म आसक्ति के बिना हो ही न सकें वे सब त्याज्य हैं-छोड़ देने लायक है। यह सुवर्ण नियम मनुष्य को अनेक धर्म संकटों से बचाता है। इस मत के अनुसार हत्या, झूठ, व्यभिचार आदि कर्म स्वभाव से ही त्याज्य हो जाते हैं। इससे मनुष्य जीवन सरल बन सकता है और सरलता से शांति का जन्म होता है।

इस विचारसरणी का अनुसरण करते हुए मुझे ऐसा लगा है कि गीताजी की शिक्षा का आचरण करने वाले मनुष्य को स्वभाव से ही सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है। फलासक्ति के अभाव में न तो मनुष्य को झूठ बोलने का लालच होता है, और न हिंसा करने का लालच होता है। हिंसा या असत्य के किसी भी कार्य का हम विचार करें, तो पता चलेगा कि उसके पीछे परिणाम की इच्छा रहती ही है।

गीता कोई सूत्रग्रंथ नहीं है। गीता एक महान ग्रन्थ है। हम उसमें जितने गहरे उतरेंगे उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ हमें मिलेंगे। गीता जनसमाज के लिए है, इसलिए उसमें एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा गया है। गीता में आए हुए महान शब्दों के अर्थ प्रत्येक युग में बदलेंगें और व्यापक बनेंगे, परन्तु गीता का मूल मंत्र कभी नहीं बदलेगा। यह मंत्र जिस रीति से जीवन में साधा जा सके उसे रीति को दृष्टि में रखकर जिज्ञासु गीता के महाशब्दों का मनचाहा अर्थ कर सकता है।

गीता विधि-निषेध (करने योग्य और न करने योग्य कर्म) बताने वाला संग्रह-ग्रन्थ भी नहीं है। एक मनुष्य

के लिए जो कर्म विहित (करने योग्य) हो, वह दूसरे के लिए निषिद्ध (न करने योग्य) हो सकता है। एक काल या एक देश में जो कर्म विहित हो, वह दूसरे काल या दूसरे देश में निषिद्ध हो सकता है। अतः निषिद्ध केवल फलासक्ति है और विहित अनासक्ति है।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जीवमात्र किस का अवतार है ?
2. ईश्वर रूप हुए बिना मनुष्य को क्या नहीं मिलता ?
3. गांधी जी के अनुसार गीता में किस युद्ध का वर्णन किया गया है ?
4. हृदय में भीतर के युद्ध को रसप्रद बनाने के लिए की गई कल्पना क्या है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गीता की शिक्षा का आचरण करने वाले मनुष्य का स्वभाव कैसा होता है ?
2. रीति को दृष्टि में रखकर गीता के मूलमन्त्र का जिज्ञासु क्या कर सकता है ?
3. अवतार का क्या अर्थ है ?
4. महात्मा गांधी जी की दृष्टि में निषिद्ध क्या है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. गीता के अध्ययन से गांधी जी को क्या अनुभूति हुई ?
2. आत्मदर्शन से सम्बन्धित गांधी जी का दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।
3. गांधी जी के अनुसार गीता का उद्देश्य क्या है ?
4. गांधी जी ने फलत्यागी किसे कहा है ?
5. गीताकार ने किस भ्रम को दूर कर दिया है ?
6. निम्नलिखित पक्तियों का भाव पल्लवन कीजिए-

   (क) "जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही।"

   (ख) "कर्म के बिना किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।"

भाषा अध्ययन

निम्नलिखित शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखिए -

1. गिता, ऐतिहसिक, धरम, फलासक्ति, सुत्रग्रन्थ।

2. निम्नलिखित शब्दों को वाक्यों में प्रयोग कीजिए -

   विश्वास, अहिंसा, चिन्तन-मनन, अभिलाषा, स्वभाव

3. दिए गए शब्दों के विलोम शब्द लिखिए -

   उत्पत्ति, निरर्थकता, सच्चा, विधि, निषिद्ध

4. रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

   1. महाभारत में ..... सर्वोच्च स्थान पर विराजती है।
   2. अद्वितीय उपाय है ..... के फल का त्याग।
   3. गीता का ..... आत्म दर्शन करने का एक अद्वितीय उपाय है।

5. निम्नलिखित वाक्यांश के लिए एक-एक शब्द लिखिए-

1. संसार से संबंधित
2. दोष से मुक्त
3. काम से रहित
4. जानने की इच्छा रखने वाला
5. धर्म का पालन करने वाला

योग्यता-विस्तार

1. विभिन्न स्रोत से ज्ञात कीजिए कि गीता ग्रन्थ का अनुवाद किन-किन भाषाओं में हुआ है?
2. आप के मन में कर्म से संबंधित कौन-कौन से भाव उत्पन्न हुए, लिखिए।
3. विभिन्न पत्र पत्रिकाओं एवं ग्रन्थों में प्रकाशित गीता से सम्बन्धित लेखों का संग्रह कीजिए।
4. गीता से प्रेरणा ग्रहण कर महान, बनने वाले व्यक्तियों का जीवन परिचय लिखिए।
5. अन्यान्य भाषाओं में लिखित उन ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कीजिए जो गीता की तरह प्रेरण देती है।

शब्दार्थ

स्फुरणा=भावों का अंकुरण, ***अमानुषी***=जो मनुष्य से सम्बन्धित न हो, ***अतिमानुषी***=मानव धर्म से परे (दैवी), ***स्थितप्रज्ञ***=स्थिर बुद्धिवाला, ***आत्मदर्शन***= आत्मा के बारे में निरूपण करने वाला शास्त्रा, ***आत्मार्थी*** = आत्मा को पाने के लिये उत्सुक, ***निष्काम***=कामना रहित, ***फलासक्ति***= फल में लगाव, ***अनासक्ति***=आसक्ति रहित, लगाव रहित, जिज्ञासु-जानने की इच्छा रखने वाला, **परिष्कृत** = शुद्ध, **प्रवृत्त** = कार्य में संलग्न, **परावृत्त** = भागना (मैदान छोड़ना), **कृतनिश्चय** = सोचा हुआ काम, **आप्त** = पूर्ण, **उदात्त** = श्रेष्ठ, **आत्मार्थी** = आत्मा को जानने का इच्छुक।

***

शंकराचार्य

केन्द्रीय भाव – लेखक श्रीधर पराड़कर ने 'शंकराचार्य' पाठ को जीवनी विधा में सहेजकर एक मार्मिक, प्रेरक एवं प्रभावशाली रचना प्रस्तुत की है, जो सहज ही पाठकों को प्रभावित करती है। प्रस्तुत आलेख आदिशंकराचार्य और उनके जीवन–दर्शन का प्रतिबिम्ब है।

शंकर बचपन से मेधावी थे। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे शीघ्र ही 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत को चरितार्थ करेंगे। माता–पिता ने उन्हें अध्ययन के लिए गुरुकुल भेजा। यहाँ भी शंकर ने 'अल्पकाल बहु विद्या पाई' जैसी उक्ति को चरितार्थ किया। उनके सम्पर्क में आने वाले उनकी प्रतिभा और तेजस्वी व्यक्तित्व को देखते ही हतप्रभ हो जाते थे। शंकर को पिताश्री का साया अधिक समय तक नहीं मिल सका। बालक शंकर इस घटना से बहुत आहत हुए। वे नश्वर संसार को देखकर, समाज जागरण के लिए संन्यास के मार्ग पर चल पड़े तथा उन्होंने गोविन्दपादाचार्य को अपना गुरु बनाया।

शंकर ने ओंकारेश्वर, केदारनाथ बद्रीनाथ, वाराणसी जैसे तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। शास्त्रार्थ में उन्होंने मण्डन मिश्र और उनकी पत्नी उभय भारती को पराजित किया। वे शंकर से शंकराचार्य हो गए और उनकी प्रशंसा होने लगी। उन्होंने अद्वैतमत की श्रेष्ठता सिद्ध की। सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही वे अपना ज्ञान–आलोक सर्वत्र प्रकाशित करते हुए महासमाधि में लीन हो गए।

लेखक परिचय

श्रीधर पराड़कर

मध्यप्रदेश के ग्वालियर निवासी श्रीधर पराड़कर का जन्म 15 मार्च, 1954 को हुआ। इनके पिताजी का नाम गोविन्द राव पराड़कर और माता का नाम श्रीमती इन्दिरा बाई पराड़कर है। वाणिज्य स्नातकोत्तर की शिक्षा प्राप्त कर श्रीधर पराड़कर ने एकाउंटेंट जनरल कार्यालय में ऑडिटर के रूप में शासकीय सेवा प्रारंभ की। श्रीधर ने 1986 में शासकीय सेवा से निवृत्ति लेकर समाजकार्य और साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए।

श्रीधर ने इंग्लैंड, श्रीलंका आदि देशों की यात्रा के साथ–साथ भारत में भी साहित्य संवर्धन यात्राएँ की।

श्रीधर की प्रमुख पुस्तके हैं '1857 के प्रतिसाद', 'अद्भुत संत स्वामी रामतीर्थ', 'अप्रतिम क्रांतिदृष्टा भगत सिंह', 'राष्ट्रसंत तुकड़ो जी', 'राष्ट्रनिष्ठ खण्डोबल्लाल', 'सिद्धयोगी उत्तम स्वामी'।

उन्होंने दत्तोपंत ठेगंड़ी की पुस्तक 'सामाजिक क्रांति की यात्रा और डॉ. अम्बेडकर का मराठी से हिंदी' में अनुवाद किया।

श्रीधर पराड़कर को वर्ष 2015 का केन्द्रीय हिंदी संस्थान, (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा भारतीय विद्या (इन्डोलॉजी) में लेखन के लिये विवेकानन्द पुरुस्कार प्रदान किया गया।

भारत के हरित शस्यश्यामल प्रदेश केरल में पूर्णा नदी के तट पर बसा ग्राम कालड़ी है। ग्राम में अनादिकाल से वेद–वेदान्त के प्रख्यात विद्वानों का निवास स्थान रहा है। वेदों के धुरंधर विद्वान विद्याराज नंबूदिरी भी यहीं निवास करते थे। उनके ही पदचिह्नों पर चलने वाले उनके पुत्र वेदों के अध्ययन व अध्यापन में रत धर्मनिष्ठ शिवगुरु वैसे तो सुखी व संतुष्ट थे, परन्तु वे निःसंतान थे। संतान प्राप्ति के लिए वृषाचलेश्वर तीर्थ जाकर उन्होंने कठोर वृत किया। पुत्र प्राप्ति पर शिव की कृपा मानते हुए उसका नाम शंकर रखा।

शंकर बचपन से ही मेधावी थे। उनकी प्रतिभा धीरे–धीरे प्रकट होने लगी। आर्यम्बा पुत्र की बुद्धिमत्ता की बातें सुनती तो उसका हृदय आह्लाद से परिपूर्ण हो जाता। इसकी प्रतीति तब अधिक हुई जब 5 वर्ष का होने पर उन्हें वेदाध्ययन के लिये गुरुकुल भेजा गया। शंकर श्रुतिधर थे। एक बार बताने पर वे पाठ समझ लेते थे।

उन दिनों विद्यार्थी को भिक्षा माँग कर गुरुकुल की व्यवस्था में हाथ बंटाना होता था। एक दिन ब्रह्मचारी शंकर भिक्षा के लिए

निकले और एक झोपड़ी के सामने उन्होंने **''भवति भिक्षां देहि''** की पुकार लगायी। गृहिणी ब्रह्मचारी को अपने द्वार पर देख कर प्रसन्न हुई और चिंतातुर भी। उस दिन भिक्षा में देने के लिए टोकरी में केवल एक सूखा आंवला था। गृहस्थ के घर से ब्रह्मचारी खाली हाथ न लौट जाये इसलिए दीनतापूर्वक उसने सूखा आंवला ब्रह्मचारी के पात्र में रख दिया। भिक्षा पाकर शंकर को उस घर की दयनीय अवस्था का ज्ञान हो गया। उन्होंने महालक्ष्मी से सम्पन्नता के लिए प्रार्थना की। कहते हैं कि इसके बाद वह परिवार धन–धान्य से सम्पन्न हो गया। यह प्रार्थना कनकधारा स्तोत्र के रूप में प्रसिद्ध है।

गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते हुए शंकर जान चुके थे कि उन्होंने जिन वेदों का अध्ययन किया है समाज में उसके अनुसार आचरण नहीं हो रहा है। केवल वेद अध्ययन करने मात्र से कुछ नहीं होगा। वेदों के प्रति समाज की अश्रद्धा को दूर करना होगा। शंकर अभी गुरुकुल में ही थे कि पिता शिवगुरु का देहान्त हो गया। शंकर बहुत दुखी हुए। पिता की मृत्यु से उनके मन में विचार आया कि जब एक दिन यह नश्वर शरीर छूटना ही है तब कीडों–मकोडों की भांति सामान्य जीवन क्यों जिया जाये? किसी महान ध्येय को लेकर सत्य के मार्ग पर चला जाये। परिणामस्वरूप सांसारिक बंधनों में न बंधते हुए समाज जागरण के लिये संन्यास मार्ग पर चलने का निश्चय किया।

शिक्षा प्राप्ति पश्चात् पुत्र को घर आया देख कर माँ अति प्रसन्न हुई। प्रत्येक माँ की तरह आर्यम्बा की स्वाभाविक इच्छा थी कि शंकर का विवाह हो। लेकिन शंकर तो संन्यास ग्रहण करना चाहते थे और इस संकल्प की पूर्ति के लिए वे चिंतित भी थे पर माँ की आज्ञा के बिना संन्यास कैसे लेते?

एक दिन स्नानादि के लिए शंकर अपनी माँ के साथ पूर्णा नदी गये हुए थे। माँ स्नान कर तट पर खड़ी थीं कि उसने शंकर की चीख सुनी। माँ ने पलट कर देखा। शंकर कमर तक पानी में थे और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे कोई अंदर खींच रहा है। शंकर ने वेदना भरे स्वर में माँ से कहा, माँ मगर ने मेरा पैर पकड़ लिया है और वह मुझे पानी में खींच रहा है। लगता है भगवान मुझे आपसे दूर कर रहे हैं। आप मुझे संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दें। संभव है मगर मेरा पैर छोड़ दे। माँ ने सोचा पुत्र को पूर्ण रूप से खोने से अच्छा है कि उसे संन्यास ग्रहण करने दिया जाये। कम से कम जीवित तो रहेगा और आश्चर्य, यह हुआ कि माँ द्वारा संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा देते ही मगर ने शंकर का पैर छोड़ दिया और दोनों माँ बेटे सकुशल घर आ गए।

शंकर ने विधिवत संन्यास ग्रहण किया और वे ऐसे संन्यासी बनना चाहते थे, जिसमें संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ कर वन में तपस्या करना नहीं अपितु देश व धर्म के लिए कर्म करना था जो मनुष्य को कर्मबंधन में नहीं बाँधते। अन्ततः संन्यासी शंकर माँ की आज्ञा पाकर योग्य गुरु की खोज में देशाटन पर निकल गए और जाते हुये माँ के चाहने पर माँ को यह आश्वस्त कर गए कि मैं तुम्हारे अंतिम समय में तुम्हारे पास उपस्थित रहकर सेवा करूँगा।

शंकर देश की परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए उत्तर दिशा में चल पड़े और अमरकंटक पहुँचे। वहाँ वे नर्मदा का महत्व जानकर नर्मदा यात्रियों के साथ पैदल यात्रा करते हुए ओंकारेश्वर पहुँचे। ज्योतिर्लिंग के दर्शन कर वे माँ नर्मदा के घाट पर बैठे थे कि जानकारी मिली समीप ही एक गुफा में गौड़पादाचार्य के शिष्य गोविन्दपाद तपस्यारत हैं। समाधिमग्न गोविन्दपादाचार्य के दर्शन से शंकर को अद्भुत शांति मिली। समाधि टूटने पर योगाचार्य ने बाल संन्यासी पर दृष्टिक्षेप किया। उन्होंने शंकर से पूछा 'वत्स तुम कौन हो?' अपना परिचय देतु हुए शंकर ने उत्तर दिया–

न भूमिर्न तोयं न तेजो न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येक सिद्धस्तदेकाऽवशिष्टः शिवः।।

अर्थात्– 'मैं पृथ्वी नहीं हूँ, जल भी नहीं, तेज भी नहीं, न आकाश, न कोई इन्द्रिय अथवा उनका समूह भी। मैं तो इन सबसे अवशिष्ट केवल जो परमतत्व शिव है, वहीं हूँ।' यह शंकर का परिचय नहीं अद्वैत का सार ही था।

गोविन्दपाद ने शंकर की असाधारण प्रतिभा को पहचाना और अपना शिष्य स्वीकार कर विधिवत संन्यास की दीक्षा दी। शंकर ने गुरु से ब्रह्मसूत्र, महावाक्य चतुष्टय आदि की गहन शिक्षा ली। यहीं पर रहते हुए उन्होंने 'प्रस्थान त्रयी' भाष्य तथा नर्मदा में पानी का स्तर बढ़ने के परिणाम स्वरूप उसके विशाल रूप को देखकर नर्मदा की स्तुति करते हुए 'नर्मदाष्टकम्' स्त्रोत की रचना की। इसलिये गुरु ने बड़ी सावधानीपूर्वक वेदान्त धर्म की

सांगोपांग शिक्षा के साथ अपने व्यवहार से शंकर को ऐसे संस्कार दिये की वह धर्म प्रचार के योग्य बन सके।

समाज जागरण के कार्य की अनुमति देने के पूर्व गोविन्दपाद शंकर को अपने गुरु गौड़पादाचार्य से मिलाने बदरीनाथ ले गये। परमगुरु को भी शंकर में अलौकिक प्रतिभा भासित हुई। उससे भी अधिक उन्होंने देखा कि शंकर के पास अपने देश और धर्म की दशा को देख कर रोने वाला हृदय भी है तथा इस दशा को दूर करने की एक अत्यन्त प्रखर आकांक्षा भी दिखाई दी। उन्होंने शंकर को अपने पास चार वर्ष रख कर स्वयं शिक्षा दी। यहाँ रह कर शंकर अनेक ग्रंथों की रचना की और उनके परमगुरु ने आज्ञा दी कि तुम देशाटन कर अद्वैत का प्रचार करो।

वे यात्रा की तैयारी कर ही रहे थे कि गाँव से एक मित्र माँ की अस्वस्थता का संदेश लेकर आया। शंकर समाचार सुनकर अविलंब कालड़ी के लिए रवाना हुये। कालड़ी पहुँचकर शंकर ने माँ के दर्शन किये। वहाँ रूककर माँ की सेवा–सुश्रुषा में लगे रहे। अन्ततः कुछ दिनों बाद माँ का स्वर्गवास हो गया। यह जानते हुए भी कि वे सन्यासी हैं और संन्यासी का कोई अपना नहीं होता उन्होने माँ का अन्तिम संस्कार किया गॉव वालों के आपत्ति करने पर उन्होने कहा कि नियम मनुष्य की सुविधा के लिए होते हैं। मनुष्य उनका दास नहीं होता।

संपूर्ण शास्त्रों के अध्ययन के साथ वे अब तक देश की परिस्थिति का अध्ययन कर चुके थे। उन्होंने देखा कि संपूर्ण देश में दो प्रकार के मत–मतान्तर हैं। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि जो व्यक्ति राष्ट्र कल्याण की भावना से कार्य कर रहें हैं उनको संगठित कर एकसूत्र में बाँधा जाये क्योंकि सांस्कृतिक एकता होने पर सभी कुछ संभव है। इस कार्य को उन्होंने वाराणसी से प्रारंभ किया। यहाँ पर उनके ग्रंथों की चर्चा होने लगी। विद्वान् पंडित इनकी विद्वत्ता से प्रभावित हुए। अब वह केवल शंकर नहीं शंकराचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। विद्वानों से शास्त्रार्थ, चर्चा का क्रम शुरू हुआ। लोग उनके मत से सहमत होने लगे। वाराणसी में उनका प्रत्येक क्षण ध्येयपूर्ति का क्षेत्र तैयार करने में व्यतीत होता था। इस समय उनकी आयु मात्र 12 वर्ष की थी और उनका यश चारों ओर फैल रहा था।

वाराणसी में एक दिन वे अपने शिष्यों के साथ गंगा स्नान को जा रहे थे। मार्ग में एक चांडाल अपनी पत्नी व चार कुत्तों के साथ सामने से आ रहा था। उसे देखते ही शिष्यों ने स्पर्श न हो इस उद्देश्य से चांडाल को कहा कि एक ओर हट जाओ। यह सुन कर चांडाल परिवार सहित वहीं खड़ा हो गया। उसने पूछा– 'महात्मन्' आप किसे दूर हटने की आज्ञा दे रहे हैं? मेरे शरीर को या मेरी आत्मा को? शरीर तो नश्वर है, आत्मा सर्वव्यापी है। आप ही कहते हैं कि ब्राह्मण व चांडाल में कोई अंतर नहीं है। आचार्य! फिर यह भेदभाव कैसा? आचार्य शांति से चांडाल की बात सुनते रहे। उनको अपने शिष्य की भूल पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उसी समय उन्होंने 'मनीषापंचक' नाम से विख्यात पाँच श्लोकों की रचना की। उस चांडाल को अपना गुरु कहा। कितना निरहंकार तथा विनम्र था शंकराचार्य का स्वाभाव। छोटे से छोटे को भी वे अपनाने को तैयार रहते थे, उससे सीख लेते थे तथा उसे आदर देते थे।

वाराणसी के बाद शंकराचार्य तपस्वियों के दल के साथ दिग्विजय करने हेतु गंगा के किनारे उत्तर की ओर बढ़े। प्रयाग, प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के बाद वे कुमारिल भट्ट से भेंट करने निकले। वस्तुतः वाराणसी में उनका रूकने का उद्देश्य कुमारिल भट्ट से ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य पर मन्तव्य लिखवाना और शास्त्रार्थ करना था किन्तु कुमारिल भट्ट ने शंकराचार्य से कहा कि तुम माहिष्मती (महेश्वर–म.प्र.) निवासी मेरे शिष्य मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करो। परिणामतः शंकराचार्य माहिष्मती आये।

महेश्वर पहुँचकर आचार्य शंकर ने पनिहारिन स्त्रियों से मंडन मिश्र के निवास के बारे में पूछा। उन स्त्रियों ने बताया कि जिस घर के दरवाजे पर पिंजड़े में बंद शुक–सारिका संस्कृत मंत्र बोल रहे हों, वही मंडन मिश्र का घर है। यह सुनकर शंकराचार्य आगे बढ़े। उन्होंने देखा कि एक घर के द्वार पर पिंजड़े में बंद शुक **''स्वतः प्रमाणम् परतः प्रमाणम्''** श्लोक बोल रहे हैं। वे समझ गये कि यही मंडन मिश्र का घर है। आचार्य ने कुमारिल भट्ट के नाम का उल्लेख करते हुए शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। अगले दिन मण्डन मिश्र ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया।

शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ और जय–पराजय का निर्णय करने का भार मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी उभय भारती को सौंपा गया। यह भी तय हुआ कि यदि मंडन मिश्र पराजित होंगे तो संन्यास स्वीकार कर लेंगे अन्यथा शंकराचार्य को गृहस्थाश्रम स्वीकार करना होगा।

शास्त्रार्थ लगातार तीन दिन तक चलता रहा। शंकराचार्य ने मंडन मिश्र के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर समाधान कर दिया। शास्त्रार्थ का निर्णय घोषित करने से पूर्व उभय भारती ने भी शंकराचार्य से विशेष शास्त्रार्थ किया किन्तु वह भी उनसे पराजित हो गयी और प्रतिज्ञा अनुसार दोनों ने आचार्य शंकर से दीक्षा ली। शंकराचार्य ने दीक्षा के समय मंडन मिश्र को उपदेश दिया जो 'तत्वोपदेश' नामक लघु ग्रंथ में संग्रहीत है। दीक्षा के बाद मंडन मिश्र का नाम सुरेश्वराचार्य हो गया और उन्हें कांची पीठ से सम्बद्ध श्रृंगेरी मठ का प्रथम अधिपति नियुक्त किया। उज्जैन प्रवास के समय शंकराचार्य ने कापालिकों के अमर्यादित आचरण को देखकर उनसे शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया।

देशाटन करते हुए शंकराचार्य ने प्रमुख तीर्थों के दर्शन किये तथा वहाँ के विद्वानों के सामने अद्वैत मत की श्रेष्ठता सिद्ध कर उन्हें अपने अनुगत किया। कृष्णा व तुंगभद्रा के संगम पर स्थित श्रीशैलम् ज्योतिर्लिंग पहुँचने पर वैष्णव, शैव, शाक्त, कापालिक मतानुयायी के समूह उनसे वाद–विवाद करने एकत्र हुए। आचार्य ने अपने शिष्य सुरेश्वराचार्य एवं पद्मपाद को उनसे चर्चा के लिये नियुक्त किया। उन्होंने मठाधीशों की शंकाओं का समाधान करते हुए अद्वैत की विजय पताका फहरायी।

अब तक शंकराचार्य को पर्याप्त ख्याति व मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। उनके शिष्यों की संख्या सहस्रों में थी। मतानुयायी तो अगणित थे, पर आचार्य को इससे संतोष कहाँ? वे तो संपूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। समाज को अद्वैत का पाठ पढ़ाना चाहते थे। उन्होंने वेदान्त और भक्ति का समन्वय किया। उन्होंने किसी भी देवता का खण्डन नहीं किया। लोगों की श्रद्धा को नष्ट न करते हुए केवल श्रद्धा का केन्द्र बदल दिया।

शंकराचार्य ने देश की चारों दिशाओं में चार मठों काञ्ची, बद्रीकाश्रम, जगन्नाथपुरी, शारदमठ की स्थापना की। वेदों के प्रचार–प्रसार के निमित्त प्रत्येक मठ को एक वेद के अध्ययन–अध्यापन का दायित्व दिया। प्रत्येक मठ का एक प्रमुख देवी–देवता निश्चित किया। संन्यासियों की प्रचलित धारा को दस भागों में विभक्त कर उनके कर्तव्य कर्म निश्चित किये। केवल बत्तीस वर्ष के जीवन में अध्ययन, अध्यापन, शास्त्रार्थ, ग्रंथों की रचना, भक्ति स्तोत्रों की रचना, पैदल देशाटन, देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए मठों की स्थापना जैसा अद्भुत कार्य किया।

अन्त में अपने लक्ष्य की पूर्ति करते हुए वे हिमालय के केदारनाथ पहुँचे और अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश देते हुए महासमाधि में लीन हो गये।

अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. शंकर का जन्म कहाँ हुआ था?
2. शंकर के माता–पिता का नाम बताइए?
3. ऊंकारेश्वर में शंकर ने किससे दीक्षा ली?
4. 'तत्वोपदेश' नामक, ग्रन्थ में किसके उपदेश संग्रहीत हैं?
5. शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच हुये शास्त्रार्थ का निर्णायक कौन था?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. कनकधारा स्तोत्र किसके लिए और क्यों प्रसिद्ध है?
2. शंकर को संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा, माँ से कब, किस स्थिति में प्राप्त हुई?
3. अद्वैत का सार लिखिए?
4. शंकर ने 'मनीषपंचक' नाम से विख्यात पाँच श्लोकों की रचना किन परिस्थिति में की थी?
5. शंकर ने किस विद्वान और विदुषी (पति–पत्नी) से शास्त्रार्थ किया था? उसका क्या परिणाम हुआ?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. शंकर ने संन्यास मार्ग अपनाने का निश्चय क्यों किया?
2. शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ़ो के नाम लिखिए।
3. गोविन्दपाद कौन थे? उन्होंने किसे विधिवत संन्यास की दीक्षा दी थी?
4. श्रृंगेरीमठ का प्रथम आचार्य किसे नियुक्त किया और क्यों?
5. शंकर के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग और प्रत्यय बाँटकर लिखिए–
   असाधारण, दयनीय, अश्रद्धा, विनम्र, प्रखर, निश्चयी, सांसारिक, अलौकिक।
2. निम्नलिखित पदों में समास पहचान कर लिखिए–
   पति –पत्नी, जय–पराजय, धीरे–धीरे
3. दिए गए शब्दों का संधि–विच्छेद कर संधि का नाम लिखि–
   वेदाध्ययन, संन्यास, चिंतातुर, संकल्प
4. निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए–
   हाथ बंटाना, खाली हाथ न लौटना, महा समाधि में लीन होना
5. निम्नलिखित वाक्यांशों के लिए दिए गए विकल्पों में से सही एक शब्द लिखिए–

   अ. जो क्रम के अनुसार हो–
   1. यथाक्रम 2. क्रमबद्ध 3. सूची 4. तालिका

   ब. आदि से अन्त तक–
   1. अन्तिम 2. आद्यक्षर 3. आद्यन्त्र 4. आद्यादस्तक

   स. जो छिपाने योग्य है–
   1. छिद्र 2. गलती 3. चरित्र 4. गोपनीय

   द. जो किए गए उपकार को नहीं मानता–
   1. कृतज्ञ 2. कृतघ्न 3. उपकारी 4. अनुपकारी

योग्यता विस्तार

1. शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार–मठों के नाम तथा उनसे संबंध वेदों की जानकारी चर्चा कर अपनी नोट बुक में लिखिए।
2. शंकराचार्य से संबंधित पुस्तकें पुस्तकालय से लेकर पढ़िए।
3. मण्डन मिश्र, गोविन्दपाद की जानकारी अपने शिक्षक जी से चर्चा करके नोट–बुक में लिखिए।
4. अमरकण्टक, ओंकारेश्वर, महेश्वर, उज्जैन, केदारनाथ, बद्रीनाथ के विषय में कक्षा में चर्चा कीजिए।
5. पुस्तकालय से अन्य महापुरुषों की पुस्तकें लेकर पढ़िये और चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ

हरित–हरा। **धुरंधर**– उत्तम गुणें वाला। **सांगोपांग**–पूर्ण, अंगव उपांगो युक्त। **कृतकार्य**– सफल मनोरत, जो अपना काम कर चुका हो।

***